卐 श्रीनेमि - लावण्य - दक्ष - सुशीलग्रन्थमाला रत्न ६२वां 卐

नैगमादिसप्तनयानां
संक्षिप्तस्वरूपदर्शिका

नयविमर्श-द्वात्रिंशिका

[व्याख्या : पद्यानुवाद-भावानुवाद-सरलार्थयुक्ता]

卐

विरचिता

जैनधर्मदिवाकर - शासनरत्न - तीर्थप्रभावक -
राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक

पूज्यपादाचार्यदेवश्रीमद्विजयसुशीलसूरिः

प्रकाशक

आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैनज्ञानमन्दिर

शान्ति नगर, सिरोही (राजस्थान)

卐 श्रीनेमि-लावण्य-दक्ष-सुशीलग्रन्थमाला रत्न ६२वां 卐

नैगमादिसप्तनयानां संक्षिप्तस्वरूपदर्शिका

नयविमर्श-द्वात्रिंशिका

[व्याख्या-पद्यानुवाद-भावानुवाद-
सरलार्थ युक्ता]

*** विरचिता ***

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपागच्छाधिपति-महाप्रभावशालि-परमपूज्याचार्यमहाराजाधिराज **श्रीमद्-विजयनेमिसूरीश्वराणां** पट्टालंकार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वराणां** पट्टधरधर्मप्रभावक-शास्त्रविशारद - कविदिवाकर - व्याकरणरत्न-परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** पट्टधर – शास्त्रविशारद – साहित्यरत्न – कविभूषण–

पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद्विजयसुशीलसूरिः**

卐 શ્રી વિજય નેમિસૂરિ-જ્ઞાન શાળા 卐
શાસન સમ્રાટ ભવન
ક્રમાંક:
સ્થાન:
શેઠ હઠીસિંહની વાડી, અમદાવાદ.

सम्पादकः

विद्वान् व्याख्याता **पूज्यमुनि श्रीजिनोत्तमविजयः**

प्रकाशकम्

आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिरम्

शान्तिनगर, सिरोही (राजस्थान)

सम्पादक :
राजस्थानदीपक पूज्यपाद
आचार्यदेव **श्रीमद्-**
विजयसुशीलसूरीश्वरजी
म. सा. के विद्वान्
व्याख्याता शिष्यरत्न
पूज्य मुनिराजश्री
जिनोत्तमविजयजी म.सा.

प्रकाशक
व
प्राप्तिस्थान :
आचार्य श्रीसुशीलसूरि
जैन ज्ञानमन्दिर
शान्तिनगर,
सिरोही (राजस्थान)

श्रीवीर सं. २५०६ श्रीविक्रम सं. २०३६ श्रीनेमि सं. ३४
प्रतियाँ १००० प्रथमावृत्ति मूल्यम् : सप्तरूप्यकाणि

सदुपदेशक

परमपूज्य शासनसम्राट् **श्रीमद्विजयनेमि-लावण्यदक्षसूरीश्वरजी म. सा.** के वयोवृद्ध शिष्य-रत्न **पूज्य मुनिराज श्रीअरिहन्तविजयजी म. सा.** के सदुपदेश से **जावाल श्रीजैनसंघ की श्रीजिनदास धर्मदास की पेढ़ी** द्वारा ज्ञान खाता में से इस पुस्तिका प्रकाशन में द्रव्य-सहायता प्राप्त हुई है।

प्रेरक :
श्री सुखपालचन्द भण्डारी
जोधपुर (राजस्थान)

मुद्रक :
हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स
जोधपुर

समर्पण

•

जिनके परम मंगल आशीर्वाद

मेरे जीवन के

सर्वांगीण विकास के परम साधन

एवं प्रेरक बल बने हैं

उन

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपागच्छाधिपति-

भारतीयभव्यविभूति-अखण्डब्रह्मतेजोमूर्त्ति-

महाप्रभावशालि-परमपूज्याचार्यमहाराजाधिराज

श्रीमद्‌विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.

के पट्टालंकार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-

शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमशासनप्रभावक-

परमपूज्य-परमोपकारी-प्रगुरुदेव-

आचार्यप्रवर श्रीमद्‌विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.

को सादर सविनय

भावभरी वन्दनापूर्वक समर्पित

-विजयसुशीलसूरि

卐 प्रस्तावना 卐

सारे जगत् में और भारत के समस्त दर्शनों में सर्वज्ञ प्रभु श्रीतीर्थंकर भगवन्त भाषित जैनदर्शन एक अलौकिक-अद्वितीय और अनुपम दर्शन है। उसमें स्याद्वाद, नयवाद, कर्मवाद एवं आत्मवाद आदि अनेक वादों का यथार्थ निरूपण है। अनेक वादों में से नयवाद जैनदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण देन है। जैनदर्शन विश्व के प्रत्येक पदार्थ का निरूपण 'नय' को दृष्टि में रखकर ही करता है जिसके समर्थन में विशेषावश्यकभाष्य में कहा है कि–

"नत्थि नएहिं विहुणं, सुत्तं अत्थो य जिणमये किंचि।"
[विशेषावश्यकभाष्य, २२७७]

अर्थात् 'जैनदर्शन में ऐसा कोई भी सूत्र और अर्थ नहीं है, जो नय से रहित हो।' इस दृष्टि से विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। "अनन्तधर्मात्मकं वस्तु" ऐसा स्याद्वादमंजरी ग्रन्थ में भी कहा है।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी म०सा० ने 'अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' ग्रन्थ में कहा है कि–

परः सहस्राः शरदतपांसि,

युगान्तरं योगमुपासतां वा ।

तथापि ते मार्गमनापतन्तो,

न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् ।।

अर्थात् [हे भगवन् !] अन्य साधक चाहे हजारों वर्षों तक तप करें या युग-युग तक योगसाधना करें; किन्तु जब तक वे नय से अनुप्राणित आपके मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे, तब तक वे मोक्ष की अभिलाषा करते हुए भी मोक्ष नहीं पा सकेंगे ।

(१). नय के लक्षण

नय की व्याख्या इस प्रकार की जाती है—

(१) **अनुयोगद्वार** की वृत्ति में कहा है कि—

"सर्वत्रानन्तधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो नयः ।"

सर्वत्र, अनंतधर्म से अध्यासित वस्तु में एक अंश को ग्रहण करनेवाला बोध '**नय**' कहा जाता है ।

(२) **प्रवचनसारोद्धार** की वृत्ति में नय के सम्बन्ध में कहा है कि—

"अनेकधर्मकं वस्त्वनवधारणपूर्वकमेकेन नित्यत्वाद्यन्यतमेन धर्मेण प्रतिपाद्य स्वबुद्धि नीयते-प्राप्यते येनाभिप्रायविशेषेण स ज्ञातुरभिप्रायविशेषो नयः ।"

अर्थात् अनेक धर्मवंत वस्तुका अनवधारणपूर्वक नित्यत्वादि अनंतधर्मों में से किसी एक भी धर्म द्वारा प्रतिपादन कर जो अभिप्राय विशेषपूर्वक इस वस्तु को अपनी उतारते हैं वह ज्ञाता का अभिप्राय विशेष '**नय**' है ।

(३) **नयचक्रसार** में नय के विषय में कहा है कि—

"अनन्तधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं ज्ञानं नयः ।"

अर्थात् अनंतधर्मात्मक वस्तु में एक धर्म का मुख्यपणे ग्रहण करना वह '**नय**' है ।

(४) **न्यायावतार** की वृत्ति में नय की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—

"अनन्तधर्माध्यासितं वस्तु स्वाभिप्रेतैकधर्मविशिष्टं नयति-प्रापयति संवेदनमारोहयतीति नयः ।"

अर्थात् अनंतधर्मों से विशिष्ट वस्तु को अपने अभिमत ऐसा एक धर्म से युक्त जो कहते हैं वह '**नय**' है ।

(५) **प्रमाणनयतत्त्वालंकार** में भी नय के लक्षण के सम्बन्ध में कहा है कि —

"नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यां शस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ।"

अर्थात् सिद्धान्त में कहे हुए प्रमाण द्वारा विषय रूप बने हुए अर्थ के अंश रूप और इतर अंशों की तरफ उदासीनता रूप ऐसा जो अभिप्राय विशेष है वह **'नय'** कहा जाता है।

नय के ऐसे अनेक लक्षण आचार्यों ने दिए हैं।

(२) नय की उपमायें

नय को अनेक उपमायें दी गई हैं। जैसे—

(१) **नय**—यह तत्त्वज्ञान के खजाना-भण्डार को खोलने की **'कूंची'** है।

(२) **नय**—यह विश्व के विचारों और वर्तनों का सामाजिक के व्यक्तिगत बंधारण के पाया को निरीक्षण करानेवाली **'दीपिका'** है।

(३) **नय**—यह विश्व के विकट में विकट प्रश्न को उकेलनारी **'बाराखड़ी'** है।

(४) **नय**—यह सहिष्णुता रूप लता को पोषण करनेवाली **'मेघवृष्टि'** है।

(५) **नय**—यह असंतोष और गैरसमझ का बहिष्कार करनेवाली **'राजाज्ञा'** है।

(६) **नय**—यह ध्येय प्राप्ति का **'आधार'** है।

(७) **नय**—यह यथार्थ रूप में ज्ञान-प्रक्रिया का **'प्रतिपादक'** और उसकी यथार्थता का **'मूल'** है।

इत्यादि अनेक उपमायें नय के विषय में दी जाती रही हैं।

(३) नय की व्यापकता

ऐसे अनेक उपमावाले अनुपम नय को जैनदर्शन में केन्द्रस्थान दिया गया है। इतना ही नहीं, किन्तु उसकी सर्वव्यापकता को भी स्वीकार किया गया है। इस विषय के सम्बन्ध में देखिये 'विशेषावश्यक' की निम्नलिखित गाथा—

"नत्थि नएहिं विहुणं, सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि।
आसज्ज उ सोयारं, नए नयविसारओ बूआ॥"
[विशेषा० २२७७]

[छाया—
"नास्ति नयैर्विहीनं, सूत्रमर्थश्च जिनमते किञ्चित्।
आसाद्य तु श्रोतारं, नयान् नयविशारदो बूआ॥"]

अर्थात् जैनदर्शन में नय रहित कोई सूत्र और अर्थ नहीं है। इसलिये नयविशारद (अर्थात् नय में निष्णात

ऐसे गुरु) योग्य श्रोता मिलने पर नय का विविध प्रकार से कथन करते हैं ।

(४) नय के भेद

विश्व में जितने भी वचन प्रकार हैं वे सभी नय की कोटि में आ जाते हैं । इस बात की घोषणा जैनदर्शन कर रहा है । इस दृष्टि से नयों की अनंतता है, अर्थात् नय अनंत हैं । इस विषय में समर्थ विद्वान् श्रीजिनभद्रगणि-क्षमाश्रमणजी महाराज ने कहा है कि—

"जावंतो वयणपहा, तावंतो वा नया विसद्दाओ ।
ते चेव य परसमया, सम्मत्तं समुदिया सव्वे ।।"

[विशेषावश्यक भाष्य २२६५]

अर्थात् वचन के जितने भी प्रकार या मार्ग हो सकते हैं नय के भी उतने ही भेद हैं । वे पर सिद्धान्त रूप हैं, और वे सब मिलकर जिनशासन रूप हैं ।

तार्किकचक्रचूडामणि आचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी म० श्री ने भी 'सन्मतितर्क' में कहा है कि—

"जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुंति नयवाया ।
जावइया नयवाया, तावइया चेव परसमया ।।"

[सन्मतितर्क गाथा-१४४]

अर्थात् जितने वचन मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं अर्थात् नयात्मक वचन हैं। इस तरह जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय अर्थात् अन्यान्य मत हैं।

नयों की संख्या अनंत होने पर भी महासमर्थ विद्वान् जैनाचार्यों ने शास्त्रों के प्रति चिन्तन और मनन के पश्चात् उन सभी नयों के विचार वृन्द का मात्र सात संख्या में समावेश किया है। ऐसा करके मानो उन्होंने गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है। वे सात नय हैं—

(१) नैगमनय, (२) संग्रहनय, (३) व्यवहारनय, (४) ऋजुसूत्रनय, (५) शब्दनय, (६) समभिरूढ़नय तथा (७) एवंभूतनय।

(५) नय की उपयोगिता

नय की यह विशिष्टता है कि वह किसी भी पदार्थ (वस्तु) के एक पक्ष को लेकर यह नहीं कहता कि यह पदार्थ एकान्त से ऐसा ही है। वह तो 'ही' के स्थान में 'भी' का प्रयोग करता है। इस पदार्थ का स्वरूप ऐसा भी है। इस तरह न करे तो वह नय दुर्नय हो जाता है। यह न हो जाय इसलिये जब 'ही' विषमता का बीज वपन करती है तब 'भी' उस विषमता के बीज का उन्मूलन करती है,

इतना ही नहीं किन्तु सर्वत्र समता के मधुर वातावरण का सृजन करती है। जैनदर्शन के इस नयवाद को अपेक्षावाद भी कहते हैं।

विश्व में जैसे सूर्य का प्रकाश आते ही अंधकार अदृश्य हो जाता है, वैसे ही जैनदर्शन के नयवाद का प्रकाश आते ही संघर्षादि शान्त हो जाते हैं। सर्वत्र शान्ति तथा समन्वय के इस सुधावर्षण में ही नयवाद की उपयोगिता निहित है। नय सर्वव्यापक हैं।

वस्तुतत्त्व का यथार्थज्ञान '**नय**' के द्वारा ही हो सकता है। नय के द्वारा होनेवाला ज्ञान ही असन्दिग्ध एवं निर्भ्रान्त है, क्योंकि वह वस्तु को विविध दृष्टि बिन्दुओं से देखने का यत्न करता है और अपने से अतिरिक्त दृष्टि-कोण का प्रतिषेध नहीं करता। यही नयवाद की विशिष्टता और उपयोगिता है।

प्रस्तुत 'नयविमर्श—द्वात्रिंशिका' की रचना

सातों नयों का संक्षेप में परिज्ञान करने के लिये जैसे महाविद्वान् **उपाध्याय श्रीविनयविजयजी महाराजश्री** ने '**नयकर्णिका**' की रचना की है, वैसे ही मैंने भी उसी का आलम्बन लेकर प्रस्तुत '**नयविमर्शद्वात्रिंशिका**' की संस्कृत श्लोकबद्ध रचना की है। तदुपरांत उसकी संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी में पद्यानुवाद, भावानुवाद तथा सरलार्थ भी

किया है। प्रथम २३ श्लोकों में नैगमादि सातों नयों का संक्षिप्त वर्णन किया है। २४ से ३२ तक ९ श्लोकों में प्रशस्ति दी गई है।

प्रस्तुत कृति की रचना में मुद्रित 'नयकर्णिका' तथा उसका विवेचन काफी सहायक रहे हैं, इसलिये उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

हमारे लघुशिष्य मुनिश्री जिनोत्तमविजयादि के लिए नयज्ञान की प्राप्ति हेतु रचित प्रस्तुत लघुग्रन्थ अन्य सभी पाठकों के मन में भी नयज्ञान के प्रति जिज्ञासात्मक भावना पैदा करनेवाला हो, इसी शुभेच्छापूर्वक विराम पाता हूं।

श्री वीर सं० २५०९,
विक्रम सं० २०३९,
नेमि सं० ३४,
वैशाख शुद ६, बुधवार
दिनांक १८-५-८३
[गोहिली में बावन जिनालय जिनमन्दिर में अंजनशलाका–प्रतिष्ठा–महोत्सव का दिन]

लेखक–
विजयसुशीलसूरि
स्थल - **गोहिली**
जैनउपाश्रय
[सिरोही समीपवर्त्ति राजस्थान]

* * *

प्रकाशकीय निवेदन

नयविमर्श—द्वात्रिंशिका नामक लघु ग्रन्थ का प्रकाशन **'आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैनज्ञानमन्दिर'** द्वारा करते हुए हमें अति आनन्द हो रहा है। शासनसम्राट्-परमपूज्याचार्य-महाराजाधिराज **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी म० सा०** के पट्टालंकार-साहित्यसम्राट्-परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वरजी म० सा०** के पट्टधर-कविदिवाकर-परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद् विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०** के पट्टधर जैनधर्मदिवाकर पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद्विजय सुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** इस लघुग्रन्थ के तथा इसके हिन्दी पद्यानुवाद-भावानुवाद-सरलार्थ के कर्त्ता हैं। नयों के प्रारम्भिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये यह लघुग्रन्थ सुन्दर और सरलभाषा में रचित है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन परमपूज्य आचार्यदेव गुरुभगवन्त के शिष्यरत्न विद्वान् व्याख्याता **पूज्य मुनिराजश्री जिनोत्तमविजयजी म० सा०** ने बड़ी सुन्दर रीति से किया है।

इस लघुग्रन्थ को प्रकाशित करने में धर्मप्रभावक परमपूज्य आचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०** के शिष्यरत्न वयोवृद्ध **पूज्यमुनिराज श्रीअरिहन्तविजयजी म० सा०** के सदुपदेश से, राजस्थान के **जावालनगर में श्रीजैनश्वेताम्बर मूर्त्तिपूजक संघ** ने अपनी **सेठ जिनदास धर्मदास की पेढ़ी** द्वारा ज्ञानखाता में से द्रव्य-सहायता प्रदान की है। एतदर्थ पूज्यपाद आचार्यदेवश्री, पूज्य मुनिराज श्रीजिनोत्तमविजयजी म० सा०, पूज्य मुनिराजश्री अरिहन्तविजयजी म० सा० का वन्दनापूर्वक तथा द्रव्य-सहायक श्री जावालसंघ का एवं मुद्रक हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स, जोधपुर का प्रणामपूर्वक आभार प्रदर्शित करते हैं।

—प्रकाशक

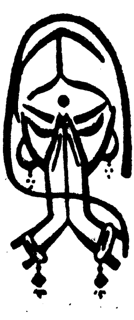

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
१. मंगलाचरणं विषयश्च	१
२. नयनामदर्शनम्	४
३. वस्तूनामुभयात्मक रूपम्	८
४. सामान्य-विशेषयोरुदाहरणद्वारा भेददर्शनम्	११
५. नैगमनयस्वरूपम्	१३
६. संग्रहनयस्वरूपम्	१६
७. संग्रहनयस्य दृष्टान्तद्वारा स्पष्टीकरणम्	१९
८. व्यवहारनयस्वरूपदर्शनम्	२१
९. व्यवहारनयस्य स्पष्टीकरणम्	२३
१०. ऋजुसूत्रनयस्वरूपम्	२८
११. ऋजुसूत्रनयस्य स्पष्टीकरणम्	३१
१२. ऋजुसूत्रनयोऽग्रेतनाश्च केवलं भावं मन्यन्ते	३३
१३. शब्दनयस्वरूपम्	३६

विषय	पृष्ठ संख्या
१४. समभिरूढ़नयस्वरूपम्	३६
१५. व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य पुष्टीकरणम्	४२
१६. एवंभूतनयस्वरूपम्	४४
१७. व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य दृढ़ीकरणम्	४७
१८. क्रमशो नयानां वैशिष्टचम्	४६
१९. मतान्तरे नयानां पञ्चैवभेदाः	५२
२०. सप्तानामपि नयानां द्वयोरेव वर्गीकरणम्	५४
२१. सर्वे नयाः परस्परं संमिल्य जिनागमस्य सेवां कुर्वन्ति, तद् विषयकं स्पष्टीकरणम्।	५७
२२. श्रमणविभुश्रीवीरजिनेन्द्राय समर्पणम्	६०
२३. प्रशस्तिः	६३
२४. नयविमर्शद्वात्रिंशिका हिन्दी सरलार्थयुक्ता	६८

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति-

भारतोय भव्यविभूति-ब्रह्मतेजोमूर्ति-महाप्रभावशाली

स्वर्गीय परमपूज्याचार्य महाराजाधिराज

श्रीमद् विजयनेमीसूरीश्वरजी म० सा०

परमशासनप्रभावक-साहित्यसम्राट् व्याकरणवाचस्पति
शास्त्रविशारद-बालब्रह्मचारी-कविरत्न

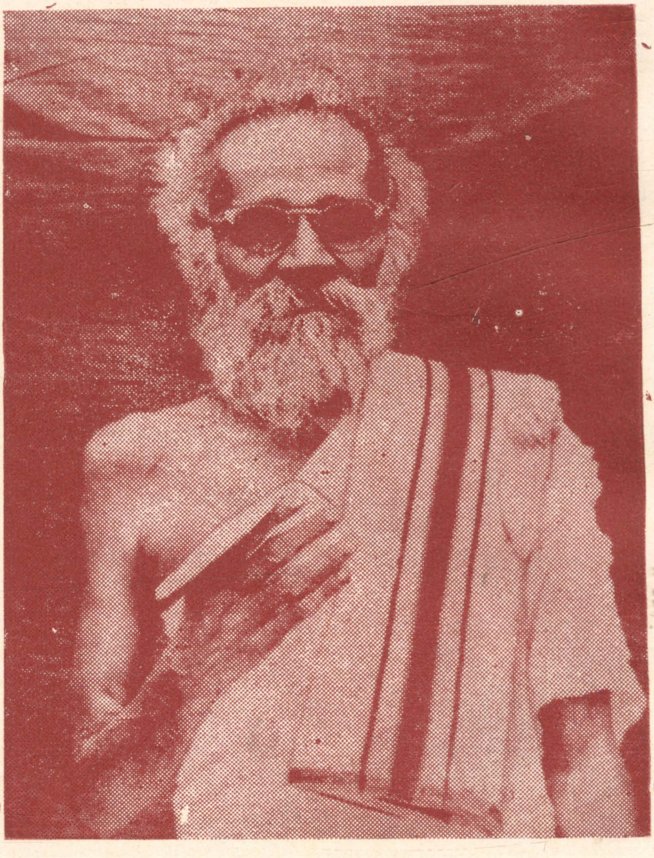

स्वर्गीय परमपूज्याचार्यप्रवर

श्रीमद्‌विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.

धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद

कविदिवाकर-देशनादक्ष-बालब्रह्मचारी

परमपूज्य आचार्यदेव

श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०

जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थान-
दीपक मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न
कविभूषण-बालब्रह्मचारी

परमपूज्याचार्यदेव

श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०

卐 ॐ ह्रीं अर्हं नमः 卐

।। करेडातीर्थमण्डनश्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः ।।

।। वर्त्तमानशासनाधिपतिश्रीमहावीरस्वामिने नमः ।।

।। अनन्तलब्धिनिधानाय श्रीगौतमस्वामिने नमः ।।

।। शासनसम्राट्श्रीनेमि-लावण्य-दक्षसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

卐 नयविमर्शद्वात्रिंशिका 卐

[व्याख्या-पद्यानुवाद-भावानुवाद युक्ता]

[१]

मङ्गलाचरणं विषयश्च —

[इन्द्रवज्रा-वृत्तम्]

श्रीवीरदेवाय नमोऽस्तु तस्मै,
सर्वे नया यद् वचने विभान्ति ।
संक्षेपतस्तन्नयवादशास्त्रं,
व्याख्यामि सम्यक्तरमात्मनीनम् ॥१॥

अन्वय :

'यद् वचने सर्वे नयाः विभान्ति, तस्मै श्रीवीरदेवाय नमः अस्तु । सम्यक्तरमात्मनीनम् तत् नयवादशास्त्रं संक्षेपतः व्याख्यामि' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

यद् वचने यत् प्रभोः वचने प्रवचने धर्मदेशनायां **सर्वे नयाः** समग्रनयभेदानां निरूपणस्वरूपं **विभान्ति** विकासमायान्ति द्योतयति समग्रं नयस्वरूपं सर्वज्ञानां तीर्थङ्कराणां प्रवचनेषु विभान्ति इत्यर्थः । **तस्मै** एतद् स्वरूपयुक्ताय **श्रीवीरदेवाय** श्रीवर्द्धमानस्वामिजिनेन्द्राय देवाधिदेवाय **नमः** नमस्कारं **अस्तु** विदधामीति ।

सम्यक्तरमात्मनीनम् सम्यक्तरं आत्मनीनम् सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यः आत्मनीनं आत्मोपगतं **तत् नयवादशास्त्रं** नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढञ्च एवंभूतादि सप्तनयानां स्वरूपं संक्षेपतः संक्षिप्य **व्याख्यामि** वर्णयामीति । इदं इन्द्रवज्रावृत्तम् । तल्लक्षणमाह—
'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।'

पद्यानुवाद :

जिनके वचन में शोभते हैं नयों सर्वे स्नेह से,
ऐसे प्रभु श्रीवीर को वन्दन करूँ अति भाव से ।
उसी प्रभु के नयवाद की संक्षेप से व्याख्या करूँ,
नयविमर्श भावानुवाद भी निज हितार्थे मैं कहूँ ।।१।।

भावानुवाद :

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' [**श्रीतत्त्वार्थसूत्र अध्याय १, सूत्र–१**] मोक्षमार्ग के लिये सम्यग्दर्शन, तदनुरूप सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की प्राप्ति, यही मोक्षमार्ग का साधन है। मानवजीवन का परमोत्कर्ष मोक्ष में ही है। इसी ध्येय के हेतु सर्वज्ञ श्रीतीर्थंकर परमात्माओं, श्रीगणधरभगवन्तों तथा श्रीआचार्यमहाराजाओं आदि ने मोक्षप्राप्ति हेतु साधनोंका तात्त्विक निर्देशन किया है। मोक्ष-प्राप्ति के तीन साधन हैं। प्रथम, सम्यग्दर्शन का अर्थ तत्त्वार्थ का श्रद्धान है। जीवाजीवादि इन नौ तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान परिशीलन ही सम्यग्दर्शन है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के अमोघ उपाय हैं–प्रमाण और नय। **'प्रमाणनयैरधिगमः'** [श्रीतत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-१ सूत्र-६] इस सूत्र में भी पूर्वधर आचार्य श्रीउमास्वाति महाराज ने प्रमाण और नयों से तत्त्वों का परिज्ञान होता है, ऐसा स्पष्ट कहा है।

अनंतधर्मात्मक वस्तु के अनेक धर्मों (अंशों, गुणों) का बोध **प्रमाण** कराता है और एक धर्म (अंश, गुण) का बोध **नय** कराता है। इसलिए प्रमाण सकलादेश भी कहा जाता है और नय विकलादेश भी। जैनदर्शन की विचारधारा के अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मात्मक है। **'अनन्तधर्मात्मकं वस्तु'** इस तरह विद्वद्वर्य आचार्य श्री मल्लिषेणसूरीश्वरजी महाराज ने 'स्याद्वादमंजरी' ग्रन्थ में

व्यक्त कर इसका समर्थन किया है। इस प्रकार प्रमाण और नय द्वारा जीवाजीवादि तत्त्वों का वास्तविक, यथार्थज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

सम्पूर्ण नयवाद का सिद्धान्त जिनके केवलज्ञान रूपी निर्मल दर्पण में साक्षात् प्रतिबिम्बित-प्रकाशमान है ऐसे सर्वज्ञ श्रीवीरदेव-महावीरस्वामी भगवान की स्तुति के साथ-साथ नैगमादि सात नयों का संक्षिप्त वर्णन **'नय-कर्णिका'** ग्रन्थ में विद्वान् वाचकवर्य श्रीविनयविजयजी महाराज ने जैसा किया है वैसा ही मैं भी उन्हीं का आलम्बन लेकर नव्य रूप में इस **'नयविमर्शद्वात्रिंशिका'** (व्याख्या तथा भावानुवाद युक्त) के माध्यम से नयज्ञान की प्राप्ति और आत्मोपलब्धि हेतु संक्षेप से कर रहा हूं। उसके प्रारम्भ में यहाँ प्रथम श्लोक में विघ्नों के शमन हेतु मंगलस्वरूप श्रीमहावीरस्वामी भगवान की स्तुति कर नयवाद का विषय-कथन सूचित किया है।। १ ।।

[२]

नयनामदर्शनम्—

[आर्या-वृत्तम्]

क्रमशो नैगम-संग्रह-
व्यवहार-ऋजुसूत्रनामतः पश्चात् ।
शब्दोऽथ समभिरूढः,
सप्तमनय एवंभूत नामास्ति ॥ २ ॥

अन्वय :

'अथ क्रमशः नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रनामतः शब्दः, पश्चात् समभिरूढः, सप्तम नय एवंभूत नामास्ति' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

अथ नयानां भेदाः कथ्यन्ते । नयानां सप्तभेदाः सन्ति । तन्नामानि आह–

प्रथमो नैगमनयः, द्वितीयः संग्रहनयः, तृतीयो व्यवहार-नयः, चतुर्थः ऋजुसूत्रनयः, पञ्चमः शब्दनयः, तत्पश्चात् षष्ठः समभिरूढनयः, सप्तमः एवंभूतनयश्चेति । एतानि नयस्य नामधेयानि सन्ति ।

पद्यानुवाद :

[हरिगीतिवृत्तम्]

प्रथम नैगम द्वितीय संग्रह तृतीय व्यवहार है,
चतुर्थ ऋजुसूत्रनय तथा पंचम ही शब्दनय है ।
षष्ठतम नय समभिरूढ़ सप्तम और एवंभूत है,
क्रमयुक्त ये सात नय सिद्धान्त में सुप्रसिद्ध हैं ।। २ ।।

भावानुवाद :

नयवाद का विषय अतिगहन है । उसके भेद के विषय में समर्थ विद्वान् श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणजी महाराज ने

कहा है कि—

जावंतो वयरणपहा, तावंतो वा नया विसद्दाओ।
ते चेव य परसमया, सम्मत्तं समुदिया सव्वे॥
[विशेषावश्यकभाष्य—२२६५]

वचन के जितने भी प्रकार-भेद हो सकते हैं उतने ही नय के भी भेद हैं। वे पर सिद्धान्त रूप हैं और सब मिलकर सम्यक् जिनशासन रूप हैं।

इस कथन के अनुसार यह कहना पड़ेगा कि नय के अनन्त भेद हो सकते हैं। स्थूल रूप से नय के कितने भेद हो सकते हैं? इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में जैन दर्शन के समर्थ विद्वान् जैनाचार्यों ने यह बतलाने का विशेष प्रयत्न किया है।

नय का तात्पर्य है विचारों में वर्गीकरण कर समीक्षा दृष्टि से सोचना कि विश्व की कोई ऐसी वस्तु नहीं या कोई ऐसा पदार्थ धर्म नहीं जो व्यावहारिक रूप से, व्यष्टि के स्वरूप से या समष्टि के रूप से अथवा आध्यात्मिक स्वरूप से इन सात नयों से पृथक् हो। जिज्ञासा सात प्रकार की होती है। इसलिए प्रश्न-प्रत्युत्तर (शंका-समाधान) के भी सात ही भेद माने गये हैं।

इन सात नयों के अतिरिक्त कोई ऐसा नहीं है जो जिज्ञासामूलक हो या समाधानमूलक हो।

सप्त नयों के नाम हैं—(१) **नैगम**, (२) **संग्रह**, (३) **व्यवहार**, (४) **ऋजुसूत्र**, (५) **शब्द**, (६) समभिरूढ़ और (७) एवंभूत।

नय के भेदों के विषय में जैनदर्शन में आचार्यों के विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। एक परम्परा सात नय को मानने वाली है। दूसरी परम्परा छह नय मान्यता वाली है, उनकी दृष्टि में नैगम कोई स्वतन्त्र नय नहीं है। यह तार्किकशिरोमणि आचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरजी महाराज का मत है। तीसरी परम्परा पांच नय मान्यता वाली तत्त्वार्थसूत्र और उसके भाष्य की है; जो नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र एवं शब्दनय को मानती है। इस परम्परा के अनुसार मूल में नय के पांच भेद बताये गये हैं। इन पाँचों भेदों में से प्रथम नैगमनय के **देशपरिक्षेपी** और **सर्वपरिक्षेपी** ये दो भेद कहे हैं, तथा अन्तिम शब्दनय के भी **साम्प्रत**, **समभिरूढ** और एवंभूत ये तीन भेद कहे हैं। इन तीन परम्पराओं के विद्यमान होने पर भी नैगमादि सात भेदों वाली परम्परा विशेष प्रसिद्ध है। **'नयकर्णिका'** ग्रन्थ में भी समर्थ विद्वान् वाचक श्रीविनयविजयजी गणिवर ने नय के भेदों के विषय में निम्नलिखित श्लोक प्रतिपादित किया है—

नैगमः संग्रहश्चैव, व्यवहारर्जुसूत्रकौ।
शब्दः समभिरूढैवंभूतौ चेति नयाः स्मृताः ॥२॥

इस **'नयविमर्शद्वात्रिंशिका'** के द्वितीय श्लोक में नय के सात भेद मानकर उनकी संख्या और उनके नाम का निर्देश मैंने किया है ॥२॥

[३]

वस्तूनामुभयात्मकं रूपम्—

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मेण विशेषधर्मैः,
साकं सदा सन्ति समे पदार्थाः ।
जात्यादिकं तत्र समानधर्मः,
विभेदकाः व्यक्तिविशेषधर्माः ॥३॥

अन्वय :

समे पदार्थाः सामान्यधर्मेण विशेषधर्मैः सदा साकं सन्ति । तत्र जात्यादिकं समानधर्मः, व्यक्तिविशेषधर्माः विभेदकाः (सन्ति) इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

सामान्यधर्मेण पदार्थाश्च **विशेषधर्मेण** विभक्तौ सामान्यधर्मः यथा मुद्रायाः एकं पार्श्वं सामान्यं, द्वितीयं विशिष्टम् । विशेषधर्मेण पदार्थानां विशिष्टो यो गुणः तेनान्वितः पदार्थः विशिष्टः **सदा** नित्यं **साकं** सहितं **समे पदार्थाः** सर्वे पदार्थाः सदैव उभयात्मकं स्वरूपं भवन्ति । जीवाऽजीवादिपदार्थाः

तयोः **जात्यादिकं** यथा जनसम्मर्दने 'जनत्वम्' जात्यादिकं धर्मं ज्ञातव्यम्, किन्तु **व्यक्तिविशेषधर्माः** तेषां जनानां मध्ये अयं गुर्जरदेशीयोऽयं मरुधरप्रदेशीयश्च एतादृशं वैशिष्टयं व्यनक्ति तत् स्वरूपं **विभेदकं** विशेषधर्मस्य लक्षणं भवति। वस्तूनां साम्यपर्यायः सामान्यः, विसदृशो विशेषः। यथा विशेषावश्यके कथितमिदम्—

तम्हा वत्थूणं चिय जो सरिसो पज्जओ स सामन्नं।
जो विसरिसो विसेसो स मओऽणत्थंतरं तत्तो।।
[विशेषा० २२०२]

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

विशेष-सामान्य विभक्त धर्मा,
सभी पदार्था उभयात्मरूपा।
जात्यादि सामान्य पदार्थ है भी,
जात्यादि से भेद विशेष है भी।।३।।

भावानुवाद :

विश्व के समस्त पदार्थ सामान्य और विशेष भेदों में विभक्त होकर उभयात्मक स्वरूपवाले हैं। जीव और अजीव आदि पदार्थ उभयात्मक रूपवाले हैं। प्रत्येक पदार्थ के दो रूप अर्थात् दो दृष्टिकोण होते हैं। एक

सामान्य और दूसरा विशेष। जैसे स्वर्ण-मुद्रा, उसका एक रूप तो सामान्य है और दूसरा रूप विशेष है। हम एक रूप को दूसरे से भिन्न नहीं कर सकते। उसी प्रकार वस्तु के उभयात्मक स्वरूप को भी एकात्मक नहीं कर सकते। अर्थात् सामान्य से विशेष को वियुक्त नहीं कर सकते तथा विशेष भी सामान्य से रहित नहीं रह सकता। यदि वस्तु या पदार्थ का एक ही स्वरूप माना जाय तो उसमें दूसरे स्वरूप का अभाव स्वतः ही हो जायगा। इसलिये सामान्य से विशेष जुड़ा हुआ ही है।

जैसे फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी का दिन है। विश्वविख्यात तीर्थसम्राट् श्री शत्रुञ्जयमहातीर्थ के छगाऊ की यात्रा में हजारों यात्रिक मनुष्यों की मेले के रूप में भीड़ लगी है। व्यक्तियों की भीड़ मनुष्यों के एक सामान्य लक्षण को व्यक्त करती है, किन्तु उसमें कोई बम्बईवाले हैं, कोई मद्रासवाले हैं, कोई कलकत्तावाले हैं, कोई अहमदाबाद-वाले हैं, कोई राजस्थानी, मारवाड़, मेवाड़, मालवा वाले हैं, कोई गुजराती गुजरात-सौराष्ट्र, कच्छ वाले हैं, कोई महाराष्ट्रीय पूना, सतारा, बेलगाँव वाले हैं, कोई पंजाबी और कोई बंगाली आदि भी हैं। किसी का कद ऊँचा है और किसी का कद नीचा-ठिगना है। किसी का गौर वर्ण है तो किसी का वर्ण गेहुँआ है। ये सब भिन्नताएं विशिष्ट धर्मों का प्रकाशन करती हैं।

एक स्थल में हजारों गायों का मेला है। उसमें पशुत्व एक सामान्य धर्म है किन्तु यह गाय गौरी है, यह गाय काली है, यह गाय चित्रविचित्र वर्ण वाली है ये सब विशेषधर्म हैं।

ये सामान्य तथा विशेष धर्म कभी वियुक्त नहीं रह सकते। इसलिये पदार्थ को सामान्यविशेषात्मक उभय-स्वरूप माना है। इस विषय में कहा भी है '**सामान्य-विशेषात्मा तदर्थो विषयः।**' [परीक्षामुखम् ४। १] अर्थात् सामान्य–विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाण का विषय है ॥३॥

[४]

सामान्य-विशेषयोरुदाहरणद्वारा भेददर्शनम्–

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मेण घटत्वबुद्ध्या,
घटेऽपि लक्षादधिके सदैक्यम्।
तेभ्यः सदा स्वं घटमानयन्ति,
विशेषधर्मेण परीक्ष्य लोकाः ॥४॥

अन्वय :

'सामान्यधर्मेण लक्षाधिके घटेऽपि घटत्वबुद्ध्या सदैक्यं, तेभ्यः सदा लोकाः विशेषधर्मेण स्वं घटं परीक्ष्य आनयन्ति' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

सामान्यधर्मेण घटत्वरूपेण मृण्मयोऽयं घटः इति सामान्यरूपेण **लक्षाधिके** घटानां लक्षाधिक्या ततिषु **घटत्वबुद्धया** मृण्मयपात्रत्वदृष्टया **सदैक्यं** सर्वदैक्यं न तु पार्थक्यम् । अयमपि मृण्मयघटरयमपि मृण्मयघटः इति सामान्यधर्मेण सदा ऐक्यं एकरूपं वर्तते, किन्तु **तेभ्यः** घटेभ्यः **विशेषधर्मेण** रक्तो वा पीतः, दीर्घो वा लघु इत्यादि वैशिष्टयेन पार्थक्यं विशेषधर्मः इति अनेन धर्मेण **लोकाः** जनाः अस्माकं घटोऽयं अयमस्माकमिति वैशिष्ष्यं मानयित्वा गृह्णन्ति ।

पद्यानुवाद :

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

सामान्यधर्माकृति एकरूपा,
दीसे सदा लक्ष घटेष्यधिका ।
जो है उसी में स्वघटे इयत्ता,
जाता पहीचान विशेषरूपा ॥४॥

भावानुवाद :

वस्तु का सामान्यधर्म एक दृष्टिकोण है जैसे हजारों घड़ों की पंक्ति एकाकार को अभिव्यक्त करती है । हजारों घड़ों में मिट्टी का तत्त्व तथा समान आकृति, जलाहरण का उपयोग आदि एक धर्म है । इस दृष्टिकोण से यह भी

घड़ा है, यह भी घड़ा है। इस प्रकार की ऐक्य-प्रतीति घड़ों में होती है।

जनसम्मर्द में सारे ही मनुष्य हैं; यह एक सामान्य दृष्टिकोण है किन्तु यह गुर्जरदेशीय है, यह राजस्थानीय है इत्यादि विशिष्ट दृष्टिकोण विशेषताओं की पृथक्ता के कारण ही विभक्त करता है। यह घड़ा छोटा है, बड़ा है, अहमदाबाद का है या पाटण का है, ये कुछ विशेषधर्मी विशेषताएँ होती हैं।

सामान्य की असत्ता विशेष की सत्ता नहीं हो सकती, अर्थात् सामान्य से भिन्न विशेष नहीं हो सकता तथा विशेष भी सामान्य से युक्त ही होता हैं ॥४॥

[५]

नैगमनयस्वरूपम्—

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मं स्वविशेषधर्मं,
वस्तूभयं वक्ति च नैगमोऽयम्।
सामान्यधर्मो न विना विशेषं,
विशेषधर्मोऽपि न तद् विना स्यात् ॥५॥

अन्वय :

'अयं नैगमः वस्तूभयं सामान्यधर्मं स्वविशेषधर्मं वक्ति,

विशेषं विना सामान्य धर्मो न, विशेषधर्मोऽपि तद् विना न स्यात्' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

अयं एषः **नैगमः** 'न एको गमो विकल्पो यस्येति नैगमः' **वस्तूभयं** पदार्थस्य सामान्यविशेषं उभयात्मकं मानयति, नैगमः अन्यविकल्परहितः अस्ति यत्र नास्ति कोऽपि अन्यः विकल्पेत्यर्थः । **विशेषं विना** निर्विशेषं सामान्यधर्मो न, सामान्यस्वरूपं नैव वर्तते, **विशेषधर्मोऽपि** विशिष्टलक्षणो धर्मोऽपि सामान्यलक्षणेन नैसर्गिकैक्यं सामान्यं विहाय न सम्भवति । अर्थात् नैगमः उभयात्मकमेव लक्षणं पदार्थस्य व्यनक्ति ।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्य भी और विशेषधर्मो,
नैगम है नित्य ये युग्मरूपी ।
सामान्य विशेष विना नहीं है,
विशेष विना न सामान्य भी है ।।५।।

भावानुवाद :

नैगमनय की शास्त्रीय व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि 'न एको गमो विकल्पो यस्य सः नैगमः' अर्थात् जिसका एक भी अन्य कोई विकल्प नहीं हो, वह नैगम कहा जाता

है। नैगमनय पदार्थ को उभयात्मक सत्ता वाला मानता है। इसलिये कहा है कि–

णेगाइं माणाइं सामन्नोभय-विसेसनाणाइं ।
जं तेहिं मिणइ तो णेगमो णओ णेगमाणोत्ति ।।
[विशेषावश्यक० २१६८]

अर्थात् जो वस्तु का स्वरूप या पदार्थ का धर्म उभय ज्ञान-प्रमाणों के द्वारा–सामान्य ज्ञान द्वारा तथा विशेष ज्ञान द्वारा–स्वीकार करता है, वह नैगमनय है।

नैगम का सामान्य अथवा विशेष यह विकल्प नहीं होता और वास्तव में उसके उभय विकल्प होते हैं। यह नैगमनय का लक्षण है।

यही नैगमनय गौण तथा मुख्य दोनों विकल्पों से युक्त रहता है, इसलिये विकलादेश (नय) कहलाता है। सकलादेश (प्रमाण) में यह गौण-मुख्य से युक्त नहीं होता। जैसे–'चैतन्योऽयं जनः' अर्थात् यह चैतन्यवान जीव जन (मनुष्य) है। इसमें 'चैतन्यः' जीव का सामान्य-धर्म है और 'जनः' (मनुष्य) जीव की विशेष पर्याय है। इसी प्रकार से 'घटोऽयं रक्तः' अर्थात् 'यह घड़ा लाल है' इसमें घटत्व सामान्यधर्म है और रक्त (लाल) वर्ण विशेषधर्म है।

इस नय में सामान्य और विशेष दोनों का रहना आवश्यक समझा गया है अर्थात् नैगमनय में सामान्य और विशेष दोनों धर्म स्वीकृत हैं। दोनों के ग्रहण में मात्र गौण-मुख्यभाव पर बल रहेगा।

नैगम का दूसरा अर्थ भी हो सकता है। इस बात का समर्थन 'विशेषावश्यकभाष्य' की निम्नलिखित गाथा में है–

लोगत्थ-निबोहा वा निगमा, तेसु कुसलो भवो वा य।
अहवा जं नेगगमोऽणेगपहा णेगमो तेणं॥

[विशेषावश्यक भाष्य–२१८७]

–लोकरूढ़ि के बोधक पदार्थ '**निगम**' कहलाते हैं, उन निगमों में जो कुशल है वह **नैगमनय** है। अथवा जिसके अनेक गम–जानने के मार्ग–हैं वह **नैगमनय** है।

विश्व में लोकरूढ़ियों द्वारा संस्कारों के कारण जो भी विचार उत्पन्न होते हैं वे समस्त इस नैगमनय की कोटि में समा जाते हैं ॥५॥

संग्रहनयस्वरूपम्–

(उपजातिवृत्तम्)

नयो द्वितीयः किल संग्रहोऽयं,
सामान्यमेवार्चति निर्विशेषम्।
सामान्यधर्माद् व्यतिरिक्तधर्माः,
मिथ्या खपुष्पस्य समानमेव ॥६॥

अन्वय :

'किल अयं संग्रहः द्वितीयः नयः (अस्ति)। (यः) निर्विशेषं सामान्यं एव अर्चति। सामान्यधर्माद् व्यतिरिक्त-धर्माः खपुष्पस्य समानं एव मिथ्या' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

किल निश्चयार्थे ध्रुवमेव **अयं** एषः **संग्रहः द्वितीयः** अन्यः **नयः** संग्रहनयः **निर्विशेषं** विशेषात्मकं **सामान्यं एव** सामान्यात्मकमेव **अर्चति** निश्चिनोति। **सामान्यधर्माद्** सामान्यात्मकत्वात् अन्यं किञ्चित् अपि **व्यतिरिक्तधर्माः** पृथक् अन्यसत्तात्मकधर्माः **खपुष्पस्य** गगनकुसुमस्य **समानं** सदृशं **एव मिथ्या** व्यर्थं आधाररहितं मन्यते। **उक्तम्–**

"सामान्यसत्तामात्रग्राही सत्तापरामर्शरूपसंग्रहः; स परापरभेदाद् द्विविधः, तत्र शुद्धद्रव्यसन्मात्रग्राहकः चेतना-लक्षणो जीव इत्यपरसंग्रहः।"

[नयचक्रसारानुसारेण]

पद्यानुवाद :

(हरिगीतवृत्तम्)

संग्रहनय वस्तु मात्र को सामान्य स्वरूपी मानता,
है कोई भी यदि इतर तो वे दृष्टि की अज्ञानता।
आकाश कुसुमों की प्राप्तता क्या कदापि होती है?,
वैसे भी विशेषी सामान्यों से नहीं विभिन्न है॥६॥

भावानुवाद :

दूसरा नय संग्रहनय के नाम से प्रसिद्ध है। यह वस्तु को सामान्यस्वरूप सामान्यधर्मी ही मानता है। सामान्यधर्म से वस्तु की सामान्य सत्ता से पृथक् अन्य कोई और विशेष या अन्य अभिधेयात्मक सत्ता आकाश-कुसुम के समान मिथ्या है या काल्पनिक है। उसकी सत्ता या उसका अस्तित्व है ही नहीं। क्यों? **"संगृह्णातीति संग्रहः"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो शंका या विचार या जिज्ञासा एक सामान्यधर्म के आधार पर पदार्थों का संग्रह करता है, यही संग्रह नय कहा जाता है।

संग्रहनय के दो भेद प्रतिपादित किये गये हैं—एक **परसंग्रह** और दूसरा **अपरसंग्रह**। समस्त पदार्थों का या धर्मों का एकत्व संकलनात्मक स्वरूप परसंग्रह में अभीष्ट याने अपेक्षित होता है। विश्व में जीव, अजीव आदि जितने भेद होते हैं उन सभी का इसी में समावेश हो जाता है। अपरसंग्रह द्रव्य में रहने वाली सत्ता परसामान्य-धर्मी है तथा द्रव्य में स्थित द्रव्यत्व अपर सामान्यधर्म है। उसी प्रकार गुण में सत्ता पर तथा गुणत्व में अपर सामान्य है। इन सब का संकलनात्मक स्वरूप ग्रहण करना ही सामान्य नय का कार्य है। द्रव्य क्षेत्र कालादि की अपेक्षा उसकी बृहत्ता, दीर्घता, लघुता भी तदनुरूप होती जाती है ॥६॥

संग्रहनयस्य दृष्टान्तद्वारास्पष्टीकरणम्–

[उपजातिवृत्तम्]

वनस्पतिं यो नहि बुध्यतेऽत्र,
बुध्येत निम्बाम्रवटान् कथं सः ? ।
हस्तेऽङ्गुलिर्वा नखमण्डलानि,
न हस्ततो वस्तु विभिन्नमस्ति ॥७॥

अन्वय :

'**यः अत्र वनस्पतिं नहि बुध्यते, सः निम्बाम्रवटान् कथं बुध्येत । हस्ते अङ्गुलिः वा नखमण्डलानि हस्ततः विभिन्नं वस्तु न अस्ति' इत्यन्वयः ।**

व्याख्या :

यथा **यः** जनः **अत्र** अस्मिन् जगति **वनस्पतिं** पादपादीनि उत्पद्यमानानि उद्भिदानि **न हि** नैव **बुध्यते** नैव जानाति **सः** अज्ञः **निम्बाम्रवटान्** निम्बश्चाम्रश्च वटश्च निम्बाम्रवटास्तान् निम्बाम्रवटान् **निम्बं** कटुरसयुक्तं **आम्रं** अम्लमधुरफलं **वटं** वडलाभिधं विशालकाययुक्तं एतादृशी विशेषदृष्टचा भेदं **कथं** केन प्रकारेण **बुध्येत** जानीयात् अर्थात् तस्य एतादृशं वैशिष्टयं ज्ञानं नैव वर्तते । **वा** विभाषा **हस्ते** करमध्ये अनामिकादि पञ्चाङ्गुल्यः तथा **नखमण्डलानि** कररुहानि **हस्ततः** हस्तात् **विभिन्नं** पृथक्

सत्तायुक्तं **वस्तुः** पदार्थः **न अस्ति नैव** वर्तते । हस्तः एतेषां समवायः एव वर्तते इत्यर्थः । तथैव सामान्येन व्यतिरिक्तं विशेषं नैव वर्तते ॥७॥

पद्यानुवाद :

[हरिगीतवृत्तम्]

वनस्पति का ज्ञान नहीं है जगत् में जिस व्यक्ति को,
वह कहां से जान लेगा ये आम्र-वट-निम्बादि को ।
नख तथा अंगुलियों से भिन्न रहता नहीं हस्त है,
उसी माफिक सामान्य से विशेष भी नहीं भिन्न है ॥७॥

भावानुवाद :

यदि कोई मनुष्य सामान्य वनस्पति से भी परिचित नहीं है तो क्या वह निम्ब-आम्र-वट आदि के गुणों को पृथक्-पृथक् कर उन वृक्षों को जान सकता है ? कभी नहीं, क्योंकि जिसे वनस्पति-पेड़-पौधे-झाड़ी आदि का भी भेद करना नहीं आता उसे पेड़ के विशेष गुणधर्म के आधार पर भेद करना आदि नहीं आ सकता । नख तथा अङ्गुलियों से भिन्न क्या हाथ का अस्तित्व है ? नहीं । नख तथा अंगुलि तो हाथ में ही हैं । वे उससे कदापि पृथक् नहीं हैं । उसी प्रकार से सामान्य से विशेष पृथक् नहीं है । वनस्पतिपना एक सामान्य धर्म है तथा निम्ब-आम्र-वटत्व इत्यादि उसके विशेष धर्म हैं । ये 'विशेष' 'सामान्य' से भिन्न हैं ही नहीं ।

इसलिये सामान्यधर्म मानना ही तर्कसिद्ध है। समुद्र तथा उसका जलांश भिन्न नहीं है, भले ही अंश को विशेषरूप से पृथक् मान लें परन्तु सामान्य को ही युक्त मानना श्रेष्ठ है। ये विशेष सामान्य में ही समाविष्ट हैं, अन्तर्हित हैं।

विशेषावश्यक में भी कहा है—

"चूओ वणस्सइच्चिय, मूलाइगुणोत्ति तस्समूहोव्व।
गुम्मादओ वि एवं, सव्वे न वणस्सइ-विसिट्ठा॥"

[विशेषावश्यक—२२१०]

[८]

व्यवहारनयस्वरूपदर्शनम्—

[उपजातिवृत्तम्]

विना विशेषं व्यवहारकार्यं,
चलेन्न किञ्चिज्जगतीह दृष्टम्।
तस्माद् विशेषात्मकमेव वस्तु,
सामान्यमन्यत् खरशृङ्गतुल्यम्॥८॥

अन्वय :

'इह जगति विशेषं विना व्यवहारकार्यं किञ्चित् न चलेत् इति दृष्टम्, तस्मात् विशेषात्मकं एव वस्तु अन्यत् सामान्यं खरशृङ्गतुल्यं (एव अस्ति)' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

इह अस्मिन् **जगति** विश्वे **विशेषं विना** भेदमत्या विना पृथक्करणविना **व्यवहारकार्यं** व्यवहारनयस्य किञ्चित्

अपि कार्यं जीवनस्य व्यवहारं न प्रभवति । **इति** व्यवहारनये दृष्टम्, **तस्मात्** अतः **विशेषात्मकं** विशेषस्वरूपं एव ग्राह्यं विशेषधर्ममेव ग्राह्यम्, विशेषभिन्नं **अन्यत्**-अन्यम् **सामान्यं** विशेषविपरीतं **खरशृङ्गतुल्यं** खरस्य शृङ्गं खरशृङ्गं तस्य तुल्यं खरशृङ्गतुल्यं गर्दभस्य शृङ्गमिव सत्ताविहीनं अस्तित्वहीनं अस्ति ।

तत्त्वार्थेऽपि उदाहृतं जगत् सत् सत्तात्मकं संकलनात्मकं विशेषम्—

"अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः"

[तत्त्वार्थ राजवार्तिक १,३३,६]

व्यवहारनयः विशेषधर्मव्याफलेन एव पदार्थं गृह्णाति । विशेषव्यतिरिक्तं नैव किञ्चित् ॥८॥

पद्यानुवाद :

[हरिगीतिकावृत्तम्]

व्यवहारनय नित्य मानता है निखिल वस्तुमात्र को,
विशेषधर्मात्मकमयी मत जान अन्यरूपी उनको ।
बिना विशेषात्मकरूप वस्तुमात्र सामान्य रूप में,
खरशृंग की समान ये असत् दीखातो है विश्व में ॥८॥

भावानुवाद :

व्यवहारनय 'विधिपूर्वकं अवहरणं व्यवहारः' । इस तरह व्युत्पत्ति दर्शाता हुआ, वस्तु को विशेष धर्मात्मक ही

स्वीकार करता है । सिद्धभगवन्तों का विकलात्मक स्वरूप ही मानता है । सभी सिद्धभगवन्तों को एकात्मक स्वरूप से नहीं देखता है तथा विशेष से भिन्न सामान्य तो खरविषाण के समान है । यथा 'सत्स्वरूप जगत:' विश्व सत्तात्मक स्वरूप में समस्त को ग्रहण करने वाला संग्रहनय है किन्तु व्यवहारनय उसमें भेद करता रहता है । प्रश्नरूप में कहते हैं कि—वह सत् जीवरूप है या अजीवरूप है ? 'केवल जीवरूप है' ऐसा कहने से भी फिर प्रश्न होगा कि वह जीव देव है, मनुष्य है, तिर्यंच है या नारक है ? इस तरहे व्यवहारनय तब तक भेद करता रहता है, जब तक उसके प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो जाती । व्यवहारनय विशेष धर्म का ही पक्षपाती है । सामान्य का प्रतिपक्षी तथा विशेष से पृथक् खरशृङ्गवत् ही सामान्य को मानता है । व्यवहारनय का मुख्य प्रयोजन व्यवहार की सिद्धि का है ।।८।।

[९]

व्यवहारनयस्य दृष्टान्तद्वारास्पष्टीकरणम्—

[उपजातिवृत्तम्]

वनस्पतिं त्वं त्वरितं गृहाण,
प्रोक्तेऽपि गृह्णाति न कोऽपि किञ्चित् ।
आम्रं ददस्वादि विशेषशब्दं,
वदेन्न तावद्धि वृथा प्रयोगः ।।९।।

अन्वय :

'त्वरितं त्वं वनस्पतिं गृहाण, इति प्रोक्तेऽपि कोऽपि किञ्चित् न गृह्णाति, आम्रं ददस्वादि विशेषशब्दं हि तावद् न वदेत् प्रयोगः वृथा' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

त्वरितं शीघ्रं **त्वं** (संकेतार्थे जनं प्रति) **वनस्पतिं** पादपादीन् **गृहाण** आनय इति **प्रोक्तेऽपि** कथितेऽपि आदेशानन्तरं **कोऽपि** सांकेतिकः आज्ञानुगः जनः **किञ्चित्** अज्ञानतया **न गृह्णाति** आनेतुमक्षमः आम्रं ददसु आदि आम्रादि-जम्बवादि-विशेषफलं आनेतुं अशक्योऽस्ति । **विशेषशब्दं हि तावद् न वदेत्** अर्थात् विशेषशब्दस्य प्रयोगं विना तं आनेतुं असमर्थो भवति । अतः विशेषधर्मं विना सामान्यधर्मं **व्यर्थमेव** निरर्थकमेव वृथा प्रयोगः इति व्यवहारनयस्य स्पष्टार्थः ।।९।।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

लाना जरा वत्स ! वनस्पति को,
क्या ला सकेगा पृथग् आम्र ही को ।
विशेष संकेत बिना नहिं ये,
सामान्य सत्ता सब ही व्यर्थ है ।।९।।

भावानुवाद :

'हे वत्स ! वनस्पति लाओ ।' किसी पिता द्वारा अपने पुत्र को ऐसा आदेशात्मक संकेत करने पर क्या वह पुत्र कुछ भी भिन्नतः पृथक् आम्रादि या अन्य फल विशेष ला सकता है ? कभी नहीं, क्योंकि विशेष आम्रादि लाने के लिये मात्र वनस्पति कहने पर वह कदापि नहीं ला सकता । इसलिये विशेष धर्म के बिना सामान्य धर्म व्यर्थ ही है अर्थात् निरर्थक है । अब यदि वनस्पति लेकर आओ यह कहा गया तो वनस्पति कहीं न कहीं विशेष रूप में सत्तात्मक तो अवश्य है । सामान्यरूप में वनस्पति कहाँ प्राप्त होती है ?

हम यहाँ जिज्ञासा कर सकते हैं कि क्या आम, जामुन या कोई वृक्षविशेष विशेषों से भिन्न है ? यदि इन्हें विशेष से भिन्न मान लें तो वनस्पति में इनका अभाव तर्कसंगत होगा, फिर घट-पटादिवत् वनस्पति अवनस्पति स्वरूप सत्तावाली होगी । इसलिये व्यवहारनय सामान्यरहित विशेषों को ही ग्रहण करता है । कहा है कि—

"नत्थि विशेषऽत्थंतरभावाओ सो खपुप्फं व ।।"

[विशेषा० ३५]

विशेष से भिन्न होने के कारण वह आकाश-पुष्प की भांति अविद्यमान है ।।६।।

[उपजातिवृत्तम्]

व्रणे च पिण्डी चरणे प्रलेपः,
नेत्रेऽञ्जनं भोक्तुमिदं फलञ्च ।
तस्तद् विशेषं कथयन् सदैव,
सर्वत्र कार्यं न समान धर्मैः ॥१०॥

अन्वय :

'व्रणे पिण्डी च चरणे प्रलेपः, नेत्रे अञ्जनं च इदं फलं भोक्तुम्, तस् तद् विशेषं कथयन् सदैव समानधर्मैः सर्वत्र न कार्यम्' इत्यन्वय : ।

व्याख्या :

व्रणे छिन्ने स्थाने वा रुग्णाङ्गे **पिण्डी** औषधालेपनावेष्टनं वा **चरणे** पादे **प्रलेपः** विलेपनं वा **नेत्रे** नयने **अञ्जनं** अञ्जनादिकरणं **इदं फलं** कमपि आम्रादिफलविशेषं **भोक्तुं** भक्षणाय प्रयोजनार्थे **तस्तद्** तादृशं **विशेषं** विशेषगुणयुक्तं **कथयन्** कथनस्य **सदैव** सर्वदा एव अपेक्षा, व्रणे पिण्डी चरणे प्रलेपः नेत्रे अञ्जनं विधेहि इदं फलं भक्षयादि विशेषविभिन्नवाक्यैः विश्लेषणं आवश्यकं वर्त्तते । **सर्वत्र एव** विभिन्नधर्मेषु **समानधर्मैः** समानवाक्यैः आदेशः न व्यवहारसिद्धिः विभिन्नार्थानां कृते विभिन्नवाक्यानां प्रयोगः

आवश्यकः। अर्थात् विशेषैरेव सिद्धिः जायते, न तु सामान्यैः ॥१०॥

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

पट्टी व्रणों में चरणे प्रलेप,
नेत्रेऽञ्जनं वस्तु सदा प्रसिद्ध।
लोके विभिन्नावसरे सदा या,
विशेष से युक्त प्रयोग होगा ॥१०॥

भावानुवाद :

जब हम लोक-व्यवहार में "जख्म (घाव) पर पट्टी बाँध दो," "पैर पर लेपन करो," "नेत्र में अंजन लगाओ," इस प्रकार की विभिन्न क्रियाओं हेतु अपना लौकिक व्यवहार प्रयोग करना चाहते हैं, अपने अर्थ की पूर्त्ति करना चाहते हैं, तो हमें यह पूर्त्ति सामान्यधम से नहीं होती। सामान्य इन विशेषताओं को कहने में अपना अभीप्सित सिद्ध करने में सक्षम नहीं होता। इसके लिए तो विभिन्न ही पूर्ति करते हैं अर्थात् विशेषों के द्वारा ही सिद्धि होती है, सामान्य के द्वारा सिद्धि नहीं होती।

यदि किसी औषधिवाले के यहाँ से हमें विभिन्न रोगों की औषधियाँ (दवा) प्राप्त करनी है तो उस रोग के निवारण का विशेष धर्म जिस औषधि में है उसी के नाम

का उल्लेख करना पड़ेगा। जैसे त्रिफला, हरड़, आमलक, सुदर्शनचूर्ण, स्वर्णभस्म इत्यादि नाम का उल्लेख करने पर ही तद्गुणधारक औषधि (दवा) विशेष को हम प्राप्त कर सकते हैं। मात्र (सामान्य) 'औषधि देना' कहने से कभी त्रिफला, हरड़, आँवला, सुदर्शनचूर्ण, स्वर्णभस्म इत्यादि हमें प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार के अवसर हमें नित्य लोकव्यवहार में प्राप्त होते रहते हैं, इसकी सिद्धि के लिये विशेष ही सशक्त है, सामान्य नहीं ॥१०॥

[११]

ऋजुसूत्रनयस्वरूपम्—

[उपजातिवृत्तम्]

भूत भविष्यद् द्विप्रकारवस्तु,
तुर्यो नयो वै ऋजुसूत्रनामा।
न वेत्ति किन्त्वत्र प्रवर्त्तमानं,
जानाति यत् संप्रति वर्त्तमानम् ॥११॥

अन्वय :

'भूतं भविष्यद् द्विप्रकारवस्तु, वै तुर्यः नयः ऋजुसूत्र-नामा न वेत्ति किन्तु अत्र प्रवर्तमानं संप्रति यत् वर्त्तमानं (तत्) एव जानाति।' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

भूतं अतीतं च **भविष्यत्** अनागतं **द्विप्रकारवस्तु** (नाम पदार्थः) पर्यायं **वै** ध्रुवं **तुर्यः** चतुर्थो नय **ऋजुसूत्र-नामा** ऋजुसूत्रनाम एतद्नामा **न वेत्ति** (न ज्ञातं भवति इत्यर्थः) अर्थात् ऋजुसूत्रनये कालापेक्षा अतीतस्य च अनागतस्य नैव वर्त्तते । ऋजुः अर्थात् सरलः सूत्रः सम्यक् सूचयति वर्त्तमानकालापेक्षया यत् सरलतया दृष्टिगोचरं करोति एतादृशः पर्यायापेक्षी ऋजुसूत्रनयः । वर्त्तमानकालातिरिक्तं यत् किंचित् अनागते वा अतीते अभूतं वा भविष्यति तयोः भावं नैव मन्यते ऋजुसूत्रनयः । यत् प्रवर्तमानं अस्ति क्षणभङ्गुरसत्तया दृष्टिपथमायाति तमेव मन्यते विश्वसिति ।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

अनागतातीत पदार्थ की ये,
नहीं अपेक्षा ऋजुसूत्र में है ।
ये वस्तु का संप्रति काल माने,
उसे स्वयं की ऋजुता हि जाने ।।११।।

भावानुवाद :

ऋजु और सूत्र दो शब्दों से मिलकर ऋजुसूत्र बना है । ऋजु का अर्थ है सरल तथा सूत्र का अर्थ है सूचित करने वाला । अर्थात् सरल अर्थ को सूचित करने वाला

ऋजुसूत्रनय है। अथवा जिसका सरलता से बोध हो, या जो वस्तु को सरलता से ग्रहण करता हो वह भी ऋजुसूत्र-नय कहा जाता है।

यह नय वस्तु की अतीत और अनागत अर्थात् भूत तथा भविष्य की सत्ता—उसके भूत भविष्य पर्याय को काल की अपेक्षा से स्वीकार नहीं करता, वह तो केवल वस्तु की वर्त्तमान सत्ता—पर्याय को ही स्वीकार करता है।

ऋजुसूत्रनय वर्त्तमान में जो इन्द्रियों की दृष्टिगोचरता की पूर्ति करता हो; जो सम्मुख भौतिक स्थिति में विद्यमान हो; जो चार्वाक दर्शन की तरह वर्त्तमान काल की स्थिति में ही सत्तात्मक हो उसे ही स्वीकार करता है। किन्तु जो अतीत के गर्त में भूतकाल के (अविद्यमानता से) अधीन वस्तु हो या भविष्य की स्वप्नावस्था के समान आशायुक्त हो, उसे स्वीकार नहीं करता। ऋजुसूत्रनय भूत तथा भविष्य की सदा उपेक्षा करता है तथा वर्त्तमान काल के परिधि पर्याय को ही स्वीकार करता है क्योंकि पर्याय की स्थिति वर्त्तमानकाल में ही रहती है; भूत तथा भविष्य तो द्रव्य के विषय हैं। इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि भूत तथा भविष्य का यह नय विरोध करता है, किन्तु अप्रयोज्य होने पर मात्र उससे उपेक्षित रहता है। ऋजुसूत्र काल की अपेक्षा से क्षण-क्षण में पदार्थ को

परिवर्तनशील मानता है । एक समय में न ही युवा है न ही दूसरे समय में वृद्ध है । एक समय में एक ही स्थितिवाला उसे ग्राह्य है । यह क्षणभङ्गवाद में विश्वास करता है ॥११॥

[१२]

ऋजुसूत्रनयस्य स्पष्टीकरणम् —

[उपजातिवृत्तम्]

भूतेन कार्यं न भविष्यताऽपि,
परेण वा सिद्ध्यति वस्तुना न ।
स्वार्थं स्वकीयेन सता च वस्तुना,
प्राप्नोति भिन्नं गगनस्य पद्मम् ॥१२॥

अन्वय :

'भूतेन परेण वा भविष्यता अपि वस्तुना कार्यं न सिद्ध्यति । स्वकीयेन वस्तुना सता च स्वार्थं प्राप्नोति, (तद्) भिन्नं गगनस्य पद्मम्' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

भूतेन अतीतेन **परेण** परकीयेण **भविष्यता** अनागतेन **वस्तुना** पदार्थेन **कार्यं** प्रयोजनं **न सिद्ध्यति** सिद्धिर्न भवति नैव जायते । **स्वकीयेन वस्तुना** वर्त्तमानकाले सम्भूतेन वस्तुना अर्थात् वर्त्तमानकालस्य यत् पर्यायं प्रवर्तमाने समये दृष्टिगतं अस्ति । एतादृशी वर्तमानकालावजन्या, वस्तुना एव सर्वप्रयोजनसिद्धिः जायते तस्मात् भिन्नं वर्त्तमान-

कालातिरिक्तं अतीतानागतं **गगनस्य** आकाशस्य **पद्मं** कमलं आकाशकुसुमसदृशं असत्तात्मकं एव वर्तते ।।१२।।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

भूते भवातीत असत्-प्रनष्ट,
पराऽपि वस्तु नहि सिद्धि युक्त ।
स्वकीय भावेन प्रवर्तमाना,
है ग्राह्य शेषास्तु खपुष्प जैसा ।।१२।।

भावानुवाद :

ऋजुसूत्र नय पदार्थ की वर्तमानकालीन स्थिति को ही स्वीकारता है; प्रवर्तमान की पर्याय अवस्था जो वर्तमान समय में सत्तात्मक दृष्टिगत है, वही कार्यसिद्धि के लिये सहायक है। अतीत तो जो प्रनष्ट अवस्था में पर्याय की स्थिति लोपित रखता है उसे ऋजुसूत्र कैसे स्वीकार करे तथा अनागत भविष्य वस्तु से जो भविष्य में उत्पन्न होने की संभावना से युक्त है, जिसकी सत्ता का अभी जन्म ही नहीं हुआ है ऐसा अनुत्पन्नभविष्य पर्याय भी ऋजुसूत्र स्वीकार नहीं करता है। जिस प्रकार कोई राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री या राज्याधिपति आदि पूर्व समय में, भूतकाल में रह चुका हो और वर्त्तमानकाल में वह चुनाव में पराजित होकर च्युत हो गया हो, तो उसकी पूर्व

भूतावस्था वर्तमान में कैसे स्वीकार की जा सकती है ? नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को प्रमुख आदि उच्चपद मिलने की सम्भावना हो तो भी वर्तमान में उसकी एतदर्थ प्रयोजन सिद्धि नहीं मानो जा सकती, क्योंकि सम्भावना में असम्भावना असम्भाव्य-देवात् सभी कुछ बाधाएं हैं। इसलिये ऋजुसूत्र नय तो दृष्टिगत प्रवर्तमान स्थिति जो कार्यसिद्धि की पूर्ण सार्थक स्वरूप है, उसे ही मानता है। वर्तमान काल में भी अपनी ही वस्तु कार्य की साधक हो सकती है, अन्य की नहीं। अतीत, अनागत और परकीय वस्तु से कार्यसिद्धि नहीं होती। अतः अन्य तो आकाशकुसुम के समान प्रयोजन-सिद्धि के लिये निरर्थक ही है ॥१२॥

[१३]

ऋजुसूत्रनयोऽग्रेतनाश्च केवलं भावं मन्यन्ते एतदर्थं स्पष्टीकरणम्—

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

नामादिनिक्षेपचतुष्षु भावं,
निक्षेपमेकं खलु मन्यतेऽयम् ।
न स्थापनां नैव च नाम-द्रव्ये,
मन्तजुसूत्रं परतस्त्रयोऽपि ॥१३॥

अन्वय :

'ऋजुसूत्रं परतः त्रयोऽपि चतुष्षु निक्षेपेषु नाम स्थापना च द्रव्ये एकं निक्षेपं अयं भावं मन्यते' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

ऋजुसूत्रं चतुर्थः नयश्च **परतः त्रयोऽपि** शब्द-समभिरूढश्च एवंभूतादि नयाः **चतुष्षु निक्षेपेषु** नाम-स्थापना-द्रव्यानि विहाय एकं चतुर्थं भावनिक्षेपं वा स्वीकार्यति । निक्षेपाः चत्वारः भवन्ति—नाम, स्थापना तृतीये; द्रव्यं चतुर्थो भावः ॥१३॥

पद्यानुवाद :

निक्षेप नामादि प्रयुक्त चारों,
शब्दार्थ ज्ञानार्थ प्रयुक्त चारों ।
न स्थापना नाम न द्रव्य माने,
भावैक चौथा ऋजुसूत्र माने ॥१३॥

भावानुवाद :

ऋजुसूत्र नय तथा उससे क्रमशः आगे के शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत नय किस नय को स्वीकार करते हैं ? इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ऋजुसूत्र तथा उससे आगे के तीन नय नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों में पूर्व के तीन त्याग कर मात्र

भावनिक्षेप को ही स्वीकार करते हैं। यथा–एक शब्द अनेक प्रयोजनों तथा अनेक प्रसंगों को लेकर अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। सायंकाल हो गया है। यह कथन अनेक प्रसंगों में अनेक अर्थ व्यक्त करता है। श्रमण एवं श्रमणी वर्ग तथा श्रावक एवं श्राविका वर्ग के लिए इसका अभिप्राय है कि प्रतिक्रमण करने का समय हो गया है। मन्दिरों में आरती उतारने का समय हो गया है। श्रमिक वर्ग समझते हैं कि अब काम से छुट्टी हो गई है।

प्रत्येक शब्द नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव रूप चार अर्थ तो रखता ही है। ये विभाग ही न्यास हैं या निक्षेप हैं। इन चारों में ऋजुसूत्र नय मात्र भावनिक्षेप को ही मानता है। ऋजुसूत्र अतीत पर्याय को स्वीकार ही नहीं करता है, क्योंकि वह विनष्ट हो गई है। भावी पर्याय को भी नहीं स्वीकारता, क्योंकि वह अभी अनुत्पन्न स्थिति में होने से प्रमाण के योग्य ही नहीं है। केवल वर्त्तमान में जो पर्याय स्थित है उसे ही ऋजुसूत्र स्वीकार करता है।

'भवतीति भावः' अर्थात् वर्त्तमान काल में जो पर्याय अस्तित्वरूप में विद्यमान है उसी को ग्रहण करनेवाला ऋजुसूत्र नय भावनिक्षेप का ही ग्राहक है। इसी तरह आगे के शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये तीन नय भी ऋजुसूत्र की भाँति भावग्राही होने से भावनिक्षेप को ही स्वीकारते

हैं; नाम, स्थापना और द्रव्य निक्षेप को नहीं। इस सम्बन्ध में कहा भी है कि—

नामाइतियं दव्वट्ठियस्स भावो य पज्जवणयस्स।
संगह-ववहारा पढमगस्स सेसा य इयरस्स॥
[विशेषा० ७५]

नाम, स्थापना तथा द्रव्य ये तीनों द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं, पर्यायार्थिक नय का विषय एक भाव ही है।

संग्रह, व्यवहार और नैगम ये तीन द्रव्यार्थिक नय हैं तथा ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ व एवंभूत ये चार पर्यायार्थिक नय हैं॥१३॥

[१४]

शब्दनयस्वरूपम्—

[उपजातिवृत्तम्]

न शब्दभेदैर्भवतीह भिन्नता,
कुम्भे घटे वा कलशेऽसरूपे।
अतश्च शब्दो नय ऐक्यमेव,
पर्यायभिन्नेष्वपि मन्यतेऽसौ॥१४॥

अन्वय :

'इह कुम्भे घटे वा कलशे शब्दभेदैः भिन्नता न भवति। पर्यायभिन्नेषु अपि शब्दो नय (असौ) अतः ऐक्य एव मन्यते' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

इह नयेषु शब्दनयः **कुम्भे घटे वा कलशे** कुम्भः आकृत्या घटात् भिन्नः भवति, कलशः पूजार्थे जलाहरणार्थं वा कलशस्थापने प्रयोगार्थं विशेषरूपेण प्रयुक्तः भवति असौ अपि घटाकृत्या भेदं धारयति, किन्तु शब्दनय एतादृशे भेदेऽपि भिन्नतां नैव मन्यते। अनेकपर्यायैः सूचितं वाच्यार्थमपि एकपर्याये एव जानाति। **पर्यायभिन्नेषु** अनेक पर्यायैः प्रोक्तेषु अपि संसूचितेषु अपि **ऐक्यं एव** एक-घटपर्याये एव मन्यते। शब्द-समभिरूढ़-एवंभूताः नयाः शब्दशास्त्रेण संयुक्ताः। शब्दनयस्तु शब्दभिन्नत्वेऽपि अर्थभेदं अस्वीकरोति ॥१३॥

पद्यानुवाद :

अनेक पर्यायक शब्द से ये—
ही एक वाच्यार्थ पदार्थ का है।
है शब्द नय तो पर्याय ऐक्य,
माने न कुंभादि घटादि भिन्न ॥१४॥

भावानुवाद :

समान लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्दों में भले ही भिन्नता हो, अर्थभेद की दृष्टि से इन पर्याय शब्दों में

शब्दनय किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं मानता। यद्यपि काल, कारक, लिङ्ग तथा उपसर्ग आदि के भेद से अर्थभेद अवश्य मानता है। अर्थात् एक शब्द भूत, भविष्य तथा वर्तमान के कालभेदों से अर्थ में भिन्नता रखता है। विचारों की गूढ़ता के कारण ही यह भेद-दृष्टि है। 'शब्दभेद से अर्थभेद नहीं होता' यह शब्दनय का मूल सिद्धान्त है।

शब्दनय अनेक पर्यायवाची शब्दों द्वारा कथित अभिधेय को एक ही पदार्थ मानता है। जैसे कुंभ, कलश और घट पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु ये अनेक शब्दपर्याय एक ही घट पदार्थ को अभिव्यक्त करने वाले हैं। अर्थात् इन तीनों का अर्थ घट रूप एक ही पदार्थ है। रही काल, लिंग तथा कारक या उपसर्गादि से अर्थ की भिन्नता।

(१) कालभेद से अर्थभेद, (२) लिंगभेद से अर्थभेद, (३) कारकभेद से अर्थभेद तथा (४) उपसर्गभेद से अर्थभेद की जितनी भी परम्पराएँ प्रचलित हैं, वे सब शब्दनय के अन्तर्गत ही अन्तर्निहित हैं।

शब्दशास्त्र का सम्पूर्ण विकसित स्वरूप शब्दनय की आधारशिला पर ही अवलम्बित है ।।१४।।

समभिरूढ़नयस्वरूपम्—

[द्रुतविलम्बितवृत्तम्]

समभिरूढनयः प्रतिशब्दतः,
कथयते पृथगर्थविशेषताम् ।
कलश-कुम्भ-घटेषु न चैकता,
भवति तेन विचार्य प्रयुज्यताम् ॥१५॥

अन्वय :

'प्रतिशब्दतः समभिरूढ़नयः पृथगर्थविशेषतां कथयते कलश-कुम्भ-घटेषु न च एकता भवति, तेन विचार्य प्रयुज्यताम्' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

प्रतिशब्दतः पर्यायभेदतः **समभिरूढ़नयः** एतन्नाम्नः नयः **पृथगर्थः** विभिन्नार्थः त भिन्नभिन्नार्थं **विशेषतां** विशिष्टतां कथयते प्रतिशब्दस्य विशेषता भवति प्रतिपर्यायशब्दे अर्थ-दृष्टा भिन्नत्वं ध्वन्यते इति समभिरूढनयः, शब्दस्य पर्यायेषु भिन्नत्वं प्रतिपादयति न तु ऐक्यं शब्दनयवत्, कलशे कुंभे घटे अर्थैक्यं नैव प्रतिपादयति कलशस्य भिन्नार्थं घटस्य भिन्नार्थं प्रतिपादयति । घटपटादिवत् । यथा कुम्भनात् कुम्भः, कलनात् कलशः, घटनात् घटः । तेन विचार्य प्रयुज्यताम् ॥१५॥

पद्यानुवाद :

[द्रुतविलम्बितवृत्तम्]

समभिरूढ़नय प्रतिशब्द से,
कह रहा पृथगर्थ विशेष से ।
कलश कुम्भ घटादि विभिन्न हैं,
नहि पुरन्दर इन्द्र समार्थ हैं ।।१५।।

भावानुवाद :

समभिरूढ़नय शब्द के पर्याय से व्युत्पत्तिजन्य अर्थ लगाकर प्रतिपर्याय भिन्न-भिन्न अर्थ मानता है । कुम्भ, कलश और घट तीनों ही पर्याय घट रूप अर्थ में एक ही अर्थ का प्रतिपादन करते हैं; यह समभिरूढ़ नय स्वीकार नहीं करता है । शब्द स्वयं में व्युत्पत्तिजन्य है और व्युत्पत्तिजन्य शब्द प्रत्येक दूसरी व्युत्पत्ति से भिन्नता को अभिव्यक्त करता है । प्रत्येक शब्द अपनी व्युत्पत्ति की मौलिकता रखता है तथा प्रवृत्ति निमित्त के आधार पर भिन्न अर्थ को अभिव्यक्त करता है ।

समभिरूढ़नय इसी सूक्ष्मता का प्रतिपादन करता है । जो अपने में व्युत्पत्ति से इस अर्थ का द्योतक है "सम् = सम्यक् प्रकारेण शब्दपर्यायेषु निरुक्तिभेदेन (प्रवृत्तिनिमित्तादिना) भिन्नमर्थमभिरोहन् समभिरूढः ।"

अर्थात्—पर्यायवाचक शब्दों में व्युत्पत्तिमूलक शब्दभेद की (प्रवृत्ति-निमित्तादिक द्वारा) कल्पना करने वाला नय समभिरूढ़ नय है ।

यथा 'कुम्भनात् कुम्भः' (कुत्सितार्थ से युक्त होने से कुम्भ है), 'कलनात् कलशः' (जल से शोभा प्राप्त करने वाला होने से कलश है) तथा 'घटनाद् घटः' (जलाहरणादि विशिष्ट चेष्टा करने वाला होने से) घट कहा जाता है । अर्थात् जैसे वाचक शब्द के भेद से घट तथा पट स्तम्भादि पदार्थ भिन्न हैं, उसी प्रकार प्रवृत्ति-निमित्तादि द्वारा, व्युत्पत्ति द्वारा कुम्भ, कलश, घट एक पर्याय होते हुए भी भिन्नार्थक हैं । इन्द्र, पुरन्दर, शक्र ये सभी एकार्थक एक पर्याय हैं; फिर भी व्युत्पत्ति से अर्थ में भिन्नता रखते हैं ।

"इन्दनात् इन्द्रः (ऐश्वर्यवाला होने से इन्द्र), पूर्दारणात् पुरन्दरः (दैत्यों के नगर का विनाश करने से पुरन्दर), शक्नात् शक्रः (शक्ति वाला होने से शक्र) कहलाता है ।"

इन्द्र, पुरन्दर और शक्र ये तीनों पर्यायवाची होते हुए भी व्युत्पत्तिभेद से भिन्न-भिन्न अर्थ को प्रतिपादित करते हैं । यही मन्तव्य समभिरूढ़ नय का है ।।१५।।

व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य पुष्टिकरणम्–

[उपजातिवृत्तम्]

स्वकीयपर्यायिपदे तदर्थं,
न मन्यते भिन्नमहो तदा तु ।
घटे पटे क्वापि समस्य सर्वै-
रापत्तिरित्यर्थं समानतायाः ॥१६॥

अन्वय :

'स्वकीयपर्यायपदे तदर्थं, अहो ! भिन्नं न मन्यते तदा तु, घटे पटे क्वापि समस्य सर्वैः समानतायाः आपत्तिः इत्यर्थः ।' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

यदि **स्वकीयपर्यायपदे** स्वकीयान्यपर्यायशब्दे **तदर्थं** तद् अर्थं पर्यायं ज्ञातुं अहो ! यदि **भिन्नं न मन्यते** व्युत्पत्त्या पर्यायभिन्नता न स्वीक्रियते अर्थात् पर्यायभेदेऽपि वस्तुनः भेदः न भवेत् तर्हि तु **घटे पटे** घटपटादिषु **क्वापि** कस्मिन् अपि पर्याये समस्य समानार्थस्य कृते **सर्वैः** शब्दपर्यायैः **समानतायाः** समानपर्यायस्य **आपत्तिः** (पर्यायभिन्नत्वे अर्थभिन्नग्रहणे अनापत्तिः) । अर्थाद् भिन्नभिन्नपर्यायेषु अपि कुम्भ-पटादिषु अपि भिन्नपर्याययोः भेदः न स्यात् ।

वस्तुतः कुम्भशब्दस्य व्युत्पत्त्याऽन्यमर्थं भवति, पटशब्द-स्यान्यमर्थं भवति । 'कुम्भनात् कुम्भः' 'पटनात् आच्छादनात् पटः' । कुम्भ-पटयोः पर्याययोः व्युत्पत्ति-शब्दयोः भिन्नत्वात् अपि अहो ! अर्थे न भेदः स्यात् द्वौ अपि एकार्थकौ स्याताम्, किन्तु लोके नैवैकार्थकौ ।।१६।।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

माने समानार्थक वस्तु कैसे !,
है भिन्न पर्याय पदार्थ सर्व ।
घटादि पर्याय पटादिकों से,
क्या भिन्नता में नहिं व्यक्त होते ।।१६।।

भावानुवाद :

शब्द-भेद होने पर अर्थ में भी भेद होता है, यह समभिरूढ़ नय में ही स्वीकार किया जाता है । व्यतिरेकी दृष्टान्त के द्वारा समभिरूढ़ नय को यहाँ अधिक स्पष्ट किया गया है कि यदि पर्याय का भेद होने पर भी वस्तु का भेद न माना जाय, तो भिन्न पर्याय वाले कुम्भ, कलश और पट में भी भेद नहीं होना चाहिये । इन्द्र, पुरन्दर और शक्र में भी भेद नहीं होना चाहिये, जबकि व्युत्पत्ति से इन पर्यायों में सभी में अर्थ भेद है ।

कुम्भनात् कुम्भः, आच्छादनात् पटः, इधर कुत्सित रूप से पूर्ण होने पर कुम्भ कहा जाता है तथा आच्छादन करने के कारण पट कहा जाता है। कुम्भ और पट इन दोनों शब्दों के प्रवृत्ति, निमित्त (व्युत्पत्तिजन्य) एवं शब्द भिन्न होने पर भी दोनों के तात्पर्य में कोई भिन्नता नहीं होनी चाहिये, किन्तु व्यवहार में दोनों ही एकार्थक या समान तात्पर्य के लिये व्यवहृत नहीं किये जाते हैं। अतः पर्याय भिन्न होने पर उन के अर्थों में भिन्नता स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। यही सारांश है तथा व्यतिरेकी दृष्टान्त के द्वारा समभिरूढ़ नय के मन्तव्य को पुष्ट करता है ॥१६॥

[१७]

एवंभूतनयस्वरूपमाह–

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

शब्देऽथ कस्मिन्नपि विग्रहार्थो,
जाघट्यते चेदथ तत्र सोऽस्तु ।
कुर्वन्तमर्थं निजविग्रहाप्त,
जानाति सैवं पदकादिभूतः ॥१७॥

अन्वय :

'अथ शब्दे कस्मिन् अपि विग्रहार्थः जाघट्यते चेद् तत्र सः अस्तु । निजविग्रहाप्तं अर्थं कुर्वन्तं सा एवं जानाति सः

पदकादिभूतः (सम्भवः एवंभूतनयः)' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

समीक्षात्मिका मतिः जिज्ञासया ईहावधारणादि-परम्परायां सूक्ष्मदृष्टचा चिन्तयेत् चेत् व्युत्पत्तिभेदेन अर्थभेदं भवति तर्हि कस्मिन् अपि शब्दे विग्रहार्थो यदा व्युत्पत्त्या तस्यार्थं विश्लेषयेत् वा विग्रहार्थो क्रियते तर्हि एव तत्रैव सोऽस्तु सः अर्थः अस्तु जाघटचते व्युत्पत्तौ एवं सोऽर्थः **जाघटचते** स्वीक्रियते अर्थात् मन्यते । एक पर्यायाभिधेयं वस्तु स्वकीयं कार्यं कुर्वाणः व्यवह्रियते । **निजविग्रहाप्तं** एकपर्यायाभिधेयं विग्रहेण प्राप्तं निजार्थः स्वार्थं कुर्वन्तः **सैवं जानाति** स्वकीयं कार्यं करोति ।।१७।।

पद्यानुवाद :

[भुजङ्गप्रयातम्वृत्तम्]

किसी वस्तु को विग्रहों से विभेदे,
मिले अर्थ स्वीकार्य होता वही है ।
सुव्युत्पत्तिजन्यार्थ सत्ता सही है,
नयैवं सदा भूत शब्दः यही है ।।१७।।

भावानुवाद :

समभिरूढ नय प्रत्येक शब्दपर्याय का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ, भिन्न-भिन्न मानता है, किन्तु एवंभूतनय उससे भी

सूक्ष्मतर दृष्टिकोण को लेकर शब्दपर्याय की समीक्षा करता है कि व्युत्पत्तिजन्य अर्थ शब्द की व्यावृत्ति के तत्समय ही कैसे सिद्ध हो सकता है। शब्दों के उच्चारण के समय तथा अर्थ के अवग्रह के समयान्तराल में क्या स्थिति होती है इस विषय में यह विचारणीय है कि शब्द की आकृति धर्म, जाति आदि विषय में क्या स्वयं शब्द ही व्युत्पत्तिअर्थ उसी समय घटित करता है ? नहीं, व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् अर्थावग्रह हो जाता हो तो फिर अर्थावग्रह की आवश्यकता ही न रहती। अतः जिस शब्द का जो अर्थ है उसके घटित होने पर ही उस शब्द का प्रयोग यथार्थ है।

एवंभूतनय स्पष्ट व्याख्या करता है कि एक शब्द-पर्याय द्वारा कथित वस्तु वा पदार्थ की कहने के समय या उस की व्युत्पत्ति के समय निश्चित्त रूप से स्व कार्य में प्रयुक्ति होती है, तथा अपना कार्य करती हुई यह शक्ति एवंभूत नय कही जाती है। अर्थात् यथा 'घट आहरणार्थे' व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है। एवंभूत नय की मान्यता है कि घट जलाहरणादि क्रिया के समय ही घट कहा जायगा। क्योंकि एवंभूत नय सर्वदा व्यञ्जनावग्रह को प्रधानता देता है। जैसे 'राजते इति राजा' राजा तब है जब कि वह राजदण्ड, छत्रादि, राज-चिह्नों से विभूषित हो। एवंभूत नय में जब कोई क्रिया हो रही हो उसी समय उस से सम्बन्धित

व्यञ्जनावग्रह का व्यवहार करने वाली सब मान्यताएँ हो जाती हैं। यह एवंभूत नय की विशेषता है ।।१७।।

[१८]

व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य दृढ़ीकरणम्—

[उपजातिवृत्तम्]

स्वविग्रहाद् भिन्नमथास्ति वस्तु,
शब्दे न यत्रास्य घटेत भावः।
तदा पटे किं न घटप्रयोगो,
वो भूयते तद् वद हे सुविज्ञ! ।।१८।।

अन्वय :

'हे सुविज्ञ! स्व विग्रहाद् भिन्न वस्तु अस्ति, शब्दे अस्य भावः न घटेत, तदा पटे किं न घटः प्रयोगो भूयते, तद् वद वः भूयते' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

'**हे सुविज्ञ !** हे सुमते ! **स्वविग्रहाद्** शब्दस्य विग्रहाद् यथा आहरणार्थं घटः इति विग्रहाद् भिन्नं **वस्तु** पदार्थः **अस्ति** इति मन्यते **शब्दे अस्य भावः न घटेत** तर्हि किं घट-शब्दस्यार्थे पटशब्दस्य प्रयोगः नैवानुचितः, तथा पटशब्दस्यार्थे घटशब्दस्य प्रयोगोऽपि भवितुं शक्यते। **तद् वद** एवंभूतनय एव **वः** अस्मत् कृते **भूयते** ? किं न स्वीक्रियते ?

यदि व्युत्पत्तौ स्वकार्यं अकुर्वाणः अपि तद्-तद् अर्थे इष्यते तदा तु घटेऽपि पटस्य व्यपदेशः इष्यतैव ।।१८।।

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

स्वविग्रहों से यदि भिन्न वस्तु,
भावाग्रही हो यदि शब्द में जो ।
पटार्थ का शब्द घटार्थ होगा,
है शक्य क्या रे ! मतिमान् कदापि ।।१८।।

भावानुवाद :

व्यतिरेकी दृष्टान्त द्वारा एवंभूतनय के विषय को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि यदि कोई पदार्थ अपनी क्रिया न करता हुआ भी उस पर्याय से, नाम से अभिहित या व्यवहृत हो सकता है तब तो फिर घट शब्द का पट शब्द के अर्थ में प्रयोग करने में क्या दोष है ? पट में घंट तथा घट में पट की अभिधेयता स्वीकार करली जाये । हे सुविज्ञ ! अपने विग्रह से भिन्नार्थ वस्तु उसी विग्रह–अर्थ वाले से भिन्न नहीं हो सकती तो पट, घट से भिन्न कैसे हो सकता है ? यदि जलाहरणार्थ क्रिया से शून्य घट, घट अर्थ में प्रयुक्त हो सकता है तो जलाहरण क्रिया न करते हुए पट शब्द का घट अर्थ में प्रयुक्त करने में क्या दोष है । जलाहरण क्रिया का न होना दोनों जगह समान है ।

परन्तु लोक में ऐसा नहीं माना जाता। अर्थात् एवंभूतनय तो 'सेव्यते इति सेवकः' तथा 'आच्छाद्यते अनेन इति पटः' ही स्वीकार करता है, अन्यथा नहीं।

इस तरह व्यतिरेकी दृष्टान्त द्वारा एवंभूतनय को दृढ किया है ॥१८॥

[१९]

क्रमशो नयानां वैशिष्टयम्–

[उपजातिवृत्तम्]

सप्ताप्यमी सन्ति नया विशुद्धाः,
यथोत्तरं चैषु परो विशिष्टः।
एकैकरूपस्य शतं प्रभेदाः,
तस्मात् नयाः सप्तशतानि सन्ति ॥१९॥

अन्वय :

'चैषु यथोत्तरं परो विशिष्टः अमी सप्त अपि नयाः विशुद्धाः एकैकरूपस्य शतं प्रभेदाः तस्मात् नयाः सप्त शतानि सन्ति' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

चैषु च एषु सप्तसु नयेषु **यथोत्तरं परो** पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरो नयः **विशिष्टः** वैशिष्टय्ं धार्यमाणः **अमी** प्रसिद्धाः **सप्त** संख्यकाः **नयाः** सिद्धान्ताः **विशुद्धाः** विशिष्ट-

शुद्धाः विशुद्धेन अत्र सूक्ष्मार्थः पूर्वनयापेक्षया उत्तरः प्रकृष्टरूपेण अस्ति विशुद्धरूपेण भवति। यथा नैगमो स्थूलः, नैगमापेक्षया संग्रहनयः न्यून एभिः क्वचित् तुसामान्यः क्वचित् असामान्यः। **एकैकरूपस्य** एकैकस्वरूपस्य नयस्य **शतं प्रभेदाः** शतसंख्यकाः भेदाः भवन्ति। तस्मात् कारणात् **नयाः सप्तशतानि** भवन्ति। अमी सप्तापि नयाः सप्तशतसंख्यकाः सन्ति ॥१६॥

पद्यानुवाद :

सातों यही है नय सूक्ष्मरूप,
है पूर्व से उत्तर ही विशुद्धः।
एकैक की है शत भेद संख्या,
है सात सौ भेद सभी नयों का ॥१६॥

भावानुवाद :

उत्तरोत्तर नयों की सूक्ष्मता का निरूपण करते हुए कहते हैं कि पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर नय सूक्ष्म (विशुद्ध) होते चले हैं। सब से स्थूल रूप से विषय का प्रतिपादन करना नैगम नय का लक्षण है, क्योंकि नैगम नय गौणता तथा प्रधानता के भावों को ग्रहण कर सामान्य तथा विशेष का ग्रहण करता है अर्थात् जब सामान्य का ग्रहण करता है तो विशेष को गौण रूप से रखता है तथा विशेष का ग्रहण करता है तो सामान्य को गौणता प्रदान

करता है। उसी प्रकार से संग्रह नय का विषय नैगमनय की अपेक्षा सूक्ष्म है, क्योंकि वह मात्र सामान्य को ही मान्यता प्रदान करता है तो व्यवहार नय संग्रहनय से भी विशुद्ध है। वह संग्रहनय द्वारा गृहीत विषय की विशेष-धर्मिता का आश्रय लेकर विभक्तीकरण करता है तो ऋजुसूत्रनय का विषय व्यवहार नय से सूक्ष्म है, क्योंकि व्यवहार नय का विषय त्रिकालसत्तात्मक है जब कि ऋजुसूत्र अतीतानागत को छोड़कर वर्तमान को ही स्वीकार करता है।

शब्दनय काल, कारक, लिङ्ग और उपसर्ग आदि के भेद से अर्थ में भेद मानकर चलता है; इसलिये शब्दनय का विषय ऋजुसूत्र नय से भी सूक्ष्म है।

समभिरूढ़नय व्युत्पत्ति भेद से अर्थभेद की नीति पर विश्वास रखकर चलता है; इसलिये समभिरूढ़नय का विषय शब्दनय से भी अल्प है।

एवंभूत नय अर्थ को तभी उस शब्द द्वारा वाच्य मानता है, जबकि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ उस पदार्थ में घटित हो रहा हो; इसलिये एवंभूत नय का विषय तो अति अल्प हो जाता है।

इस प्रकार सभी सातों नय पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होते गये हैं तथा एक-एक नय के

सौ-सौ भेद होते हैं। कुल नैगमादि सातों नयों के सात सौ [७००] भेद होते हैं।

श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी महाराज ने भी विशेषावश्यक में ऐसा ही कहा है—

एक्केक्को य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव।
[विशेषा०, २२६४]

अर्थात्—एक-एक नय के सौ-सौ भेद होने से नयों के कुल सात सौ भेद होते हैं ॥१९॥

[२०]

मतान्तरे नयानां पञ्चैव भेदाः –

[उपजातिवृत्तम्]

शब्दान्नयाद् यौ परवर्त्तिनौ स्तः,
तौ शब्द अन्तर्भवतो मतेन।
नयाऽस्तु पञ्चैव तदात्मभेदैः,
भवन्ति ते पञ्चशती भिदोऽत्र ॥२०॥

अन्वय :

'शब्दान्नयाद् यौ परवर्तिनौ स्तः, तौ शब्द अन्तर्भवतः मतेन, तदात्मभेदैः नयाः तु पञ्चैव भवन्ति, ते अत्र पञ्चशती भिदः (भवन्ति)' इत्यन्वयः।

व्याख्या :

शब्दात् शब्दनयात् **परिवर्तिनौ** समभिरूढैवंभूतनयौ **स्तः** भवतः, **तौ** परिवर्तिनौ समभिरूढश्च एवंभूतश्च नयौ **अन्तः** शब्दनये समाविशेताम् चेत् **मतेन** मतान्तरेण अन्तर्भा**वात्म-भेदैः नयाः पञ्च** एव **भवन्ति** नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-ऋजु-सूत्र-शब्दनयसङ्ख्यकाः पञ्चनयाः एव भवन्ति, ते पञ्चनयाः मूलस्वरूपैः **पञ्चशती** पञ्चशतानि संख्यासु भवन्ति वा विस्तार्यन्ते । अत्र मतान्तरस्यार्थः अप्येतद् अन्य श्रीजिनभद्र-गणिक्षमाश्रमणादिभिः आचार्यैः अभिहितम्—

अन्नो वि य आएसो, पंचसया होंति नयाणं

(विशेषा. २२६४)

एक अन्य आदेश भी है, जिससे नय के पाँच सौ भेद होते हैं ।।२०।।

पद्यानुवाद :

समभिरूढ़ तथान्य नयादि को,
यदि करे युत शब्दनयादि में ।
तब नयादि समन्वित पांच हैं,
प्रति शत क्रम से शत पांच हैं ।।२०।।

भावानुवाद :

मतान्तर से विभिन्न आचार्यों का एक मत यह भी है कि समभिरूढ़ नय तथा एवंभूत नय जो शब्दनय के पूर्ववर्ती

हैं इन्हें शब्दनय में ही क्यों न समाविष्ट किया जावे। इन दोनों नयों को शब्दनय में समाविष्ट करने पर नयों की संख्या पाँच ही रह जायगी। ये हैं 'नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द'—ये पांच नय ही मूल रूप से रह जायेंगे। प्रत्येक नय के सौ भेद होते हैं तो इन पाँचों नयों के पांच सौ भेद हो जाते हैं।

इस कथन से स्पष्ट होता है कि समभिरूढ़ तथा एवंभूत दोनों नय शब्दनय के साथ अन्तर्हित हो जांय तो मूलरूप से पांच नय ही हैं। इस मतान्तर का उल्लेख विशेषावश्यक में करते हुए पूज्य श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी म. ने भी कहा है कि—

"एक अन्य आदेश भी है, जिससे नय के पाँच सौ भेद होते हैं" ॥२०॥

[२१]

सप्तानामपि नयानां द्वयोरेव वर्गीकरणम्—

[उपजातिवृत्तम्]

द्रव्यास्तिके भान्ति च नैगमादि-
चतुर्नया वै ऋजुसूत्रकान्ताः।
शब्दादयस्ते चरमे त्रयोऽपि,
पर्यायपूर्वास्तिकवर्तिनः स्युः ॥२१॥

अन्वय :

'नैगमादि चतुर्नयाः वै द्रव्यास्तिके भान्ति, ऋजुसूत्र-कान्ताः शब्दादयः ते चरमे त्रयोऽपि पर्यायपूर्वास्तिकवर्तिनः स्युः' इत्यन्वयः ।

व्याख्या :

अत्र नयानां वर्गीकरणं कृत्वा व्याख्यायते । अमी सप्तापि नयाः द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकयोः अन्तर्भवंति ।

प्रथम् नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राः चतुर्नयाः **द्रव्यास्तिके** सामान्यांशग्राहके द्रव्यार्थिके च शब्द-समभिरूढैवंभूताः नयाः त्रयसंख्यकाः पर्यायपूर्वास्तिके **पर्यायास्तिके** विशेषांश-ग्राहके पर्यायास्तिकाख्ये नये **स्युः** भान्ति अन्तर्भवन्ति सर्वज्ञविभुश्रीतीर्थंकरभगवन्तानां देशनायां सामान्य–विशेष-प्रतिपादिका दृष्टिः भवति अर्थाद् विश्वस्य समस्तपदार्थाः सामान्यविशेषमूलकाः भवन्त्येव इति निश्चितं सत्यं नये प्रतिपादितम् ।।२१।।

भावानुवाद :

यह विश्व पदार्थों के समुदाय से व्याप्त है। हमें जितने भी पदार्थ दिखाई देते हैं वे एक दूसरे से भिन्न हैं, किन्तु सर्वथा भिन्न भी नहीं है तथा सर्वथा समान भी नहीं है। इनमें साम्य भी है और असाम्य भी। इसी दृष्टिकोण से प्रत्येक पदार्थ दो विभागों में विभक्त किया गया है।

इसी के विषय में नैगमादि सातों नयों का वर्गीकरण दृष्टिभेद से करते हैं, तो इन सातों नयों को प्रथमतः दो नयों में विभक्त किया गया है। एक है द्रव्यास्तिक नय और दूसरा है पर्यायास्तिक नय। इन्हीं दो में सातों नयों को पुनः अन्तर्निहित किया गया है।

प्रथम जो नैगम, संग्रह, व्यवहार तथा ऋजुसूत्र ये चार हैं, इन्हें द्रव्यास्तिक नय में समाविष्ट किया गया है क्योंकि ये चारों नय सामान्य अंश को ग्रहण करने वाले हैं। इनकी विचारणा सामान्यबोधक होती है, सर्वज्ञविभु श्रीतीर्थंकर भगवन्तों की देशना-में इस दृष्टि की भी **संग्रहप्रस्तार** के रूप में उपलब्धि होती है। दूसरा है पर्यायास्तिकनय जो शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत नय का समन्वयात्मक स्वरूप है। इसका दृष्टिकोण विशेष अंश को ग्रहण करने का पक्षपाती है, जो श्रीतीर्थंकरभगवन्तों की देशना में **विशेष-प्रस्तार** के रूप में उपलब्ध होता है।

यही दो भेद हैं। संक्षिप्तरूप से यदि हम वर्णन करें तो इन दो दृष्टियों को छोड़कर हम पृथक् नहीं जा सकते। इनका प्रतिनिधित्व ये दो नय-भेद करते हैं। इस प्रकार से सातों नयों का अन्तर्भाव द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक इन दो नयों में समझना चाहिये ॥२१॥

[उपजातिवृत्तम्]

विरोधवन्तोऽपि मिथो नयास्ते,
सम्भूय जैनं समयं भजन्ते ।
यथा च सेना जन एकतानः,
युद्धाः जयं भूपतये ददाति ॥२२॥

अन्वय :

'यथा विरोधवन्तः अपि जनः एकतानः युद्धाः सेना भूपतये जयं ददाति तथैव (विरोधवन्तः अपि नयाः) सम्भूय जनं समयं भजन्ते इत्यन्वयः।

व्याख्या :

यथा विरोधवन्तः विरोधभूताः परस्परविरोधिनः **अपि जैनः** भूपतिः **एकतानः** एकत्रिता परस्परं एकीभूयः **युद्धा** युद्धसमये **सेना** सेना द्वारा **भूपतये** चक्रवर्त्तिने नृपाय **जयं** जेतुं सहायं **ददाति** कुर्वन्ति चक्रवर्त्तिनं नृपं अनुगच्छन्ति । तं एव अनुसरन्ति । अर्थात् युद्धसमये तस्य विरोधिनः राजानः अपि एकीभूय युद्धे चक्रवर्त्तिनं नृपं एवं सहायं कुर्वन्ति, तथैव परस्परविरोधं धारयन्तः नयाः अपि नैगमादि सप्तनयाः परस्परं विरोधं मतं धारयन्तः अपि **सम्भूय** मिलित्वा **जैनं समयं** जैनशास्त्रं जैनागमान् एव प्रतिपाद-

यन्ति । यथा 'अनन्तधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं नयः' इति नयचक्रसारग्रन्थे कथितम् । अतः श्रीजिनभद्रगणिक्ष-माश्रमणेनोक्तमस्ति–

जावंतो वयणपहा तावंतो वा नया विसद्दाओ ।
ते चेव य पर समया सम्मत्तं समुदिया सव्वे ।।
[विशेषा., २२६५]"

यावन्तो वचनप्रकारास्तावन्तो नयाः सन्ति तथा यावन्तो नया भवन्ति ते सर्वे एकान्तनिश्चयवत्त्वेन अन्यदर्शन-रूपा भवन्ति । किन्तु यदा ते समुदिताः जायन्ते तदा एकान्तनिश्चयेन रहिता '**स्यात्**' शब्दयुक्तत्वेन हेतुना सम्यक् जायते । अतः श्रीवीतरागदेवस्य स्तुतिकार आचार्यः स्तौति–

"उदधाविव सर्वसिन्धवः,
समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टयः ।"

'हे नाथ ! यथा समुद्रे इतस्ततः समागत्य सर्वा नद्यो मिलन्ति तथैव भगवति सर्वदर्शन धारा आगत्य मिलन्ति ।'

परस्परविरुद्धा भवन्तोऽपि नया एकत्र भवितुमर्हन्ति सम्यक्त्वभावं प्राप्नुवन्ति ।

परस्परविरोधिनां नयानां समक्षे जैनदर्शनमपि तेषा-मेकान्तरूपविरोधहेतुं निरस्यति तदा ते सम्यक्त्वं भजन्ते । श्रीविशेषावश्यकग्रन्थे कथितमपि–

सव्वे समेंति सम्मं, चेगवसाओ नया विरुद्धा वि ।
मिच्च-व्यवहारिणो इव, राओदासीणवसवत्ती ।।
[विशेषा. २२६७]

पद्यानुवाद :

[उपजातिवृत्तम्]

भले नृपों के नृप हो विरोधी,
है पादसेवी इग चक्रवर्त्ती ।
तथैव सातों मिलके नयों भी,
सेवा करे नाथ ! जिनागमों की ।।२२।।

भावानुवाद :

जिस प्रकार परस्पर विरोध को धारण करने वाले राजा युद्ध के समय एकत्र होकर अपना निजी विरोध छोड़कर चक्रवर्त्ती राजा का ही अनुसरण करते हैं अर्थात् उसकी पुष्टि ही करते हैं; उसी प्रकार ये सातों नय भी एक दूसरे से विरोधी मन्तव्य रखते हुए भी मिलकर आपके शुभ आगमशास्त्रों की ही सेवा करते हैं । अर्थात् आपके प्रवचन-जिनवाणी का समर्थन करते हैं ।

जैनदर्शन में विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक स्वीकार की गई है । जो उन अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म का आश्रय लेकर उसका प्रतिपादन करती है और अन्य धर्मों के प्रति उदासीनता का भाव दर्शाती है, किन्तु इस

प्रकार की सातों नयों में भले ही सापेक्षता की दृष्टि से विभिन्नता हो किन्तु वे सब मिलकर आगमों का ही प्रतिपादन करते हैं। जैनागम के प्रतिपादन में वह अपेक्षा कहीं विरोध को प्रगट नहीं करती, परन्तु मिलकर तो उसकी पुष्टि ही करती है।

परस्पर विरोधी नय भी जब एकत्र सप्तनय हो जाते हैं तो जैनदर्शन रूपी न्यायप्रिय चक्रवर्त्ती एकान्त विरोध के कारण को हटाता हुआ विरोध दूर कर देता है तथा सम्यक्त्व की ओर ले जाता है ॥२२॥

[२३]

विभुश्रीवर्द्धमानजिनेन्द्रदेवाय समर्पणम्—

[द्रुतविलम्बितवृत्तम्]

परिमळोपमभावसमन्वितैः,
नयविमर्शविचः सुमनोऽक्षतैः ।
जिनवरं चरमं परमं प्रभुं,
बिनयतोऽर्चति सूरिसुशील वै ॥२३॥

अन्वय :

'परिमलोपमभावसमन्वितैः नयविमर्शवचः सुमनोऽक्षतैः, चरमं परमं जिनवरं प्रभुं, सूरिसुशीलः वै विनयत अर्चति इत्यन्वयः ।'

व्याख्या :

परिमलोपमभावसमन्वितैः परिमलस्य उपमायाः भावाः परिमलोपमभावाः, परिमलोपभावैः समन्वितः परिमलोपमभावसमन्वितः तैः परिमलोपमभावसमन्वितैः सुगन्धोपमभावयुतैः **नयविमर्शवचः** नयानां विमर्शः नयविमर्शः नयविमर्शरूपवचः नयविमर्शवचः नयार्थकवचः एव **सुमनोऽक्षतैः** वचः स्वरूपाणि सुमनानि कुसुमानि च तैः पुष्पाक्षतैः **जिनवरं** जिनेषु वरं जिनवरं जिनश्रेष्ठं तीर्थङ्करदेवं **चरमं** अन्तिमं **परमं** सर्वोत्कृष्टं **प्रभुं** श्रीवर्द्धमानं श्रीमहावीरं परमात्मानं **सूरि सुशीलः वै** आचार्यः सुशीलसूरिः **वै** एव **विनयतः** विनयेन युक्तः **अर्चति** पूजति ।

अर्थात्—नयविमर्शरूपाक्षतपुष्पवचोभिः सुशीलसूरिः चरमतीर्थङ्करं वर्द्धमानं महावीरप्रभुं विनयतः अर्चति ॥

पद्यानुवाद :

[द्रुतविलम्बित छंद]

परिमलोपमभाव सभी भरे,
नयविमर्श स्वरूप सुपुष्प से ।
सुवच अक्षत सूरि सुशील ले,
नत हुए प्रभुवीर तवार्चने ॥२३॥

भावानुवाद :

सुगन्धित भावपुष्पों से एवं नयविमर्शरूपी अक्षत कुसुमों के वचनों से चरमतीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर परमात्मा को शीलगुणसम्पन्न सुशीलसूरि नामवाला मैं, प्रभु की भक्ति के लिये तथा अपने आत्मश्रेय के लिये यह नयविमर्श ग्रन्थ, पुष्पमाला के समान समर्पित करता हूँ तथा आपकी अर्चना में विनत हो रहा हूँ।

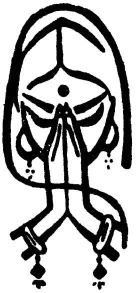

प्र..श..स्तिः

[अनुष्टुब्-वृत्तम्]

(१)

पूज्याः **श्रीनेमिसूरीशाः**,
तपोगच्छेश्वराः शुभाः ।
सम्राजः शासने प्रौढाः,
तीर्थोद्धारधुरन्धराः ॥२४॥

(२)

तेषां पट्टधराः ख्याताः,
ग्रन्थानेकानुसर्जकाः ।
विज्ञाः साहित्यसम्राजो,
लावण्यसूरिशेखराः ॥२५॥

(३)

तेषां पट्टधराः मुख्याः,
धर्मप्रभावकाः वराः ।
शास्त्रविशारदाः दक्षाः,
दक्षसूरीश्वराभिधाः ॥२६॥

(४)

तेषां पट्टधरः सोऽहं,
'सुशीलसूरि' नामतः ।
जिनोत्तमादि शिष्याणां,
नयज्ञानाय हेतवे ॥२७॥

(५)

द्विसहस्रत्रयोत्रिंशत्—
तमे वैक्रमिके वरे ।
माघे शुक्ला त्रयोदश्यां,
मेदपाटे बुधे दिने ॥२८॥

(६)

करेडाख्ये शुभे तीर्थे,
अञ्जनस्य विधिः कृता ।
पार्श्वादिजिनबिम्बानां,
प्रतिष्ठायाः महोत्सवे ॥२९॥

(७)

रचितञ्च कृता भाषा,
गद्य - पद्यान्वयान्विताः ।
नयविमर्शग्रन्थोऽयं,
सर्वेषां तत्त्वज्ञानदः ॥३०॥

(८)

अभिलाषा मदीयेयं,
जायतां जगतां हिते ।
यावच्चन्द्रार्कभावन्तौ,
तावद् ग्रन्थो विभासतु ।।३१।।

(९)

[वसन्ततिलका - वृत्तम्]

द्वात्रिंशिका नयविमर्शवचांसि पुष्पैः,
पद्यात्मभावमकरन्दरसाभिरामैः ।
गद्यात्मकाक्षतकणैः सुललामरूपैः,
त्वामर्चयामि जिनशासनशास्त्रपीठे ।।३२।।

।। इति 'श्रीनयविमर्शद्वात्रिंशिका' समाप्ता ।।

• • •

卐 प्रशस्ति का भावार्थ 卐

(१)

आचार्य श्रीनेमिसूरीश्वरजी म. सा. पूज्य हैं, तपागच्छ के नायक हैं, उत्तम हैं, शासन के सम्राट् हैं, प्रौढ़ हैं और तीर्थों का उद्धार करने में धुरन्धर हैं ।।२४।।

(२)

उन्हीं के पट्टधर **आचार्य श्रीलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.** प्रसिद्ध हैं, अनेक ग्रन्थों के सृजक हैं, विज्ञ हैं और साहित्य-

सम्राट् हैं ।।२५।।

(३)

उन्हीं के प्रधान पट्टधर **आचार्य श्रीदक्षसूरीश्वरजी म. सा.** धर्मप्रभावक हैं, श्रेष्ठ हैं, शास्त्र विशारद हैं और दक्ष हैं ।।२६।।

(४)

उन्हीं के पट्टधर (मैं) **सुशीलसूरि** अपनी जिज्ञासा-वृत्ति एवं अध्ययन-स्वाध्याय से **जिनोत्तमविजयादि** शिष्यों के नय एवं तर्कशास्त्र के अध्ययनार्थ······।।२७।।

(५)

विक्रम संवत् २०३३ माघ शुक्ला त्रयोदशी (महा शुद-१३) को बुधवार के दिन मेदपाट-मेवाड़ में···।।२८।।

(६)

करेड़ा नाम के उत्तम तीर्थ में **अंजनशलाका** आदि विधि के साथ में **प्रभु श्रीपार्श्वनाथ आदि अनेक जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा महोत्सव** समयावधि में महान् उत्सव एवं उल्लास के समय····।।२९।।

(७)

मैंने संस्कृत गद्य-पद्यान्वय से युक्त सबको तत्त्वज्ञान देने वाले इस **नयविमर्श** नामक ग्रन्थ की रचना की है।

इसका हिन्दी भाषा में सरलार्थ, पद्यानुवाद तथा भावानुवाद भी किया है ।।३०।।

(८)

मेरी अभिलाषा है कि यह ग्रन्थ सबको तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र का ज्ञान सुगमता से प्रदान करे तथा जब तक चन्द्र और सूर्य हैं तब तक यह सुशोभित रहे ।।३१।।

(९)

हे जिन ! आगम-शास्त्रपीठ पर मैं पद्यमय भाव-मकरन्दरसों से युक्त नयविमर्शद्वात्रिंशिका रूपी पुष्पों से तथा गद्यात्मरूप सुन्दर पूजाक्षतों से आपकी अर्चना करता हूँ ।।३२।।

।। इति श्रीनयविमर्शद्वात्रिंशिका व्याख्या-पद्यानुवाद-भावानुवाद सहिता समाप्ता ।।

卐

नयविमर्शद्वात्रिंशिका

(हिन्दीसरलार्थयुक्ता)

(१)

मङ्गलाचरणं विषयश्च–

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

श्रीवीरदेवाय नमोऽस्तु तस्मै,
सर्वे नया यद् वचने विभान्ति ।
संक्षेपतस्तन्नयवादशास्त्रं,
व्याख्यामि सम्यक्तरमात्मनीनम् ॥१॥

सरलार्थ–

मंगलाचरण और विषय

जिनके वचन में सर्व नय शोभा पाते हैं ऐसे श्री वीर-देव-वर्द्धमानविभु को नमस्कार कर मैं उत्तम आत्मभाव से संक्षेप में नयवाद शास्त्र की व्याख्या करता हूँ ।

(२)

नयनामदर्शनम्–

[आर्यावृत्तम्]

क्रमशो नैगम-संग्रह–
व्यवहारजुसूत्रनामतः पश्चात् ।
शब्दोऽथ समभिरूढः,
सप्तमनय एवंभूतनामास्ति ॥२॥

सरलार्थ–

नयों के नाम

[जैनदर्शन में] क्रमशः (१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ़ और (७) एवंभूत ये सात नय माने जाते हैं अर्थात् नय सात हैं ॥२॥

(३)

वस्तूनामुभयात्मकत्वम्–

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मेण विशेषधर्मैः,
साकं सदा सन्ति समे पदार्थाः ।
जात्यादिकं तत्र समानधर्मः
विभेदकाः व्यक्तिविशेषधर्माः ॥३॥

सरलार्थ-

पदार्थों का उभयात्मक रूप

विश्व में सब पदार्थ अर्थात् वस्तुएँ सामान्यधर्म एवं विशेष धर्मों से युक्त हैं । पदार्थ में जाति आदि को सामान्य-धर्म तथा अन्य से भेद दिखलाने वाले गुण को विशेष धर्म कहा जाता है ॥३॥

(४)

सामान्य-विशेषयोरुदाहरणद्वारा भेददर्शनम्-

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मेण घटत्वबुद्ध्या,
घटेऽपि लक्षादधिके सदैक्यम् ।
तेभ्यः सदा स्वं घटमानयन्ति,
विशेषधर्मेण परीक्ष्य लोकाः ॥४॥

सरलार्थ-

सामान्य तथा विशेषधर्म के उदाहरण द्वारा भेददर्शन

घटत्व (इस) सामान्यधर्म द्वारा तज्जातीय लाखों घटों में सर्वदा एकता बनी रहती है । घटत्व की अपेक्षा सब घट एक से ही हैं, किन्तु विभेदक विशेषधर्म के द्वारा उन अनेक घटों में से अपना-अपना घट पहचान लिया जाता है और व्यवहार चलता है ॥४॥

(५)

नैगमनयस्वरूपम्–

[उपजातिवृत्तम्]

सामान्यधर्मं स्वविशेषधर्मं,
स्वतूभयं वक्ति च नैगमोऽयम् ।
सामान्यधर्मो न विना विशेषं,
विशेषधर्मोऽपि न तद् विना स्यात् ॥५॥

सरलार्थ–

नैगमनय का स्वरूप

नैगमनय वस्तु में स्थित सामान्यधर्म (जाति) और विशेषधर्म दोनों को मानता है, क्योंकि विशेषधर्म के बिना सामान्यधर्म नहीं रहता है और न सामान्यधर्म के बिना विशेषधर्म ही रहा करता है। अतः नैगमनय वस्तु को उभयरूप स्वीकार करता है ॥५॥

(६)

संग्रहनयस्वरूपम्–

[उपजातिवृत्तम्]

नयो द्वितीयः किल संग्रहोऽयं,
सामान्यमेवार्चति निर्विशेषम् ।
सामान्यधर्माद् व्यतिरिक्तधर्माः,
मिथ्या खपुष्पस्य समानमेव ॥६॥

सरलार्थ--

संग्रहनय का स्वरूप

संग्रह नामक नय केवल सामान्यधर्म (जाति) को ही कहता है क्योंकि यह दूसरा नय ऐसा मानता है कि वस्तुओं में सामान्य धर्म के अतिरिक्त विशेष आदि धर्म का कुछ भी अस्तित्व नहीं है। सामान्य के अतिरिक्त विशेष धर्म तो आकाश कुसुम के समान मिथ्या है ॥६॥

(७)

संग्रहनयस्य दृष्टान्तद्वारा स्पष्टीकरणम्--

[उपजातिवृत्तम्]

वनस्पतिं यो नहि बुध्यतेऽत्र,
बुध्येत निम्बाम्रवटान् कथं सः?
हस्तेऽङ्गुलिर्वा नखमण्डलानि,
न हस्ततो वस्तु विभिन्नमस्ति ॥७॥

सरलार्थ--

संग्रहनय का दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण

जब कोई व्यक्ति वनस्पति (झाड़-पेड़ आदि) को ही नहीं जानता है तो फिर उसे नीम, आम, वट आदि के पत्र-पुष्पादि लाने को कहा जाय तो वह कैसे ला सकेगा ?

अर्थात् नहीं ला सकता है। नीम, आम, वट आदि वनस्पति से अलग नहीं हैं। जैसे हाथ में स्थित अंगुलि-नख आदि हाथ से भिन्न नहीं होते, उसी प्रकार सामान्य से अतिरिक्त विशेष की सत्ता नहीं मानी जाती है ॥७॥

(८)

व्यवहारनयस्वरूपदर्शनम्–

[उपजातिवृत्तम्]

विना विशेषं व्यवहारकार्यं,
चलेन्न किञ्चिज्जगतीह दृष्टम् ।
तस्माद् विशेषात्मकमेव वस्तु,
सामान्यमन्यत् खरशृंगतुल्यम् ॥८॥

सरलार्थ--

व्यवहारनय का स्वरूप

यह नय वस्तु में स्थित केवल विशेषधर्म को ही मानता है, क्योंकि विशेष के बिना केवल सामान्य धर्म से व्यवहारनय नहीं चलता है। संसार के व्यवहार तो तत् तद् विशेष धर्मों से ही चलते हैं। अत: विशेष धर्म के अलावा सामान्यधर्म गर्दभ के सींग की भाँति मिथ्या है, अर्थात् विशेष धर्म के अतिरिक्त सामान्य धर्म को मानना हास्यास्पद है ॥८॥

(९)

व्यवहारनयस्य स्पष्टीकरणम्—

[उपजातिवृत्तम्]

वनस्पतिं त्वं त्वरितं गृहाण,
प्रोक्तेऽपि गृह्णाति न कोऽपि किञ्चित् ।
आम्रं ददस्वादि विशेषशब्दं,
वदेन्न तावद्धि वृथा प्रयोगः ॥९॥

सरलार्थ—

व्यवहारनय का स्पष्टीकरण

'तुम शीघ्र वनस्पति लाओ ? या ग्रहण करो' ऐसा कहने पर कोई भी व्यक्ति चुप होकर स्थिर रहता है, कुछ भी नहीं लाता या ग्रहण करता है । किन्तु जब उसी व्यक्ति को यह कहा जाता है कि आप नीम या वटपत्र लाओ तो वह शीघ्र ही ले आता है, केवल सामान्य धर्म के प्रयोग से कार्य नहीं होता । अतः विशेषातिरिक्त सामान्य को यह नय नहीं मानता है ॥९॥

(१०)

[उपजातिवृत्तम्]

व्रणे च पिण्डी चरणे प्रलेपः,
नेत्रेऽञ्जनं भोक्तुमिदं फलञ्च ।
तस्तद्विशेषं कथयन् सदैव,
सर्वत्र कार्यं न समानधर्मैः ॥१०॥

सरलार्थ–

पुनः पूर्वकथित बात को स्थिर किया जाता है–

व्रण पर (जख्म पर) पट्टी बाँध दो, पाँव में लेप करो, आँख में अञ्जन लगाओ, खाने को अमुक फल दो (इत्यादि), विशेषरूप में कहने पर ही सब सफल होता है, किया जाता है। अतः सामान्य धर्म को मानना ठीक नहीं। काम तो विशेष धर्म के द्वारा ही सिद्ध होता है ॥१०॥

(११)

ऋजुसूत्रनयस्वरूपम्–

[उपजातिवृत्तम्]

भूतं भविष्यद् द्विप्रकारवस्तु,
तुर्यो नयो वै ऋजुसूत्रनामा।
न वेत्ति किन्त्वत्र प्रवर्त्तमानं,
जानाति यत् संप्रति वर्त्तमानम् ॥११॥

सरलार्थ–

ऋजुसूत्रनय का स्वरूप

ऋजुसूत्र नामका यह चौथा नय वस्तु की भूत और भविष्यत् पर्याय को छोड़कर केवल वर्त्तमान पर्याय को ही मानता है क्योंकि व्यवहार में भूत और भविष्यत् पर्यायों की उपयोगिता नहीं है ॥११॥

(१२)

ऋजुसूत्रनयस्य स्पष्टीकरणम्–

[उपजातिवृत्तम्]

भूतेन कार्यं न भविष्यताऽपि,
परेण वा सिद्ध्यति वस्तुना न।
स्वार्थं स्वकीयेन सता च वस्तुना,
प्राप्नोति भिन्नं गगनस्य पद्मम् ॥१२॥

सरलार्थ–

ऋजुसूत्रनय का स्पष्टीकरण

भूत अर्थात् बीता हुआ, भविष्य अर्थात् होनेवाला तथा परकीय वस्तु से कार्यों की सिद्धि नहीं होती है, कार्य तो केवल वर्त्तमान एवं स्वकीय वस्तु से ही होता है। अतः यह ऋजुसूत्रनय भूत तथा भविष्यत् को मान्यता नहीं देता है, मात्र वर्त्तमान की ही अपेक्षा रखता है, इसके लिए भूत और भविष्यत् तो आकाशपुष्प की तरह निरर्थक हैं ॥१२॥

(१३)

ऋजुसूत्रनयोऽग्रेतनाश्च केवलं भावं मन्यन्ते–

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

नामादिनिक्षेपचतुष्षु भावं,
निक्षेपमेकं खलु मन्यतेऽयम्।
न स्थापनां नैव च नामद्रव्ये,
मन्तजुसूत्रं परतस्त्रयोऽपि ॥१३॥

सरलार्थ–

ऋजुसूत्रादि चारों नयों की मात्र भाव निक्षेप की मान्यता

ऋजुसूत्रनय एवं इसके बाद शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत ये तीन नय भी स्थापना आदि चार निक्षेपों में से मात्र भाव निक्षेप को ही स्वीकार करते हैं ।।१३।।

(१४)

शब्दनयस्वरूपमाह–

[उपजातिवृत्तम्]

न शब्दभेदैर्भवतीह भिन्नता,
कुम्भे घटे वा कलशेऽसरूपे ।
अतश्च शब्दो नय ऐक्यमेव,
पर्यायभिन्नेष्वपि मन्यतेऽसौ ।।१४।।

सरलार्थ–

शब्दनय का स्वरूप

पर्यायशब्दों के भेद से समानार्थक शब्दों में भेद नहीं माना जाता है । अतः शब्दनय के द्वारा भिन्न-भिन्न पर्याय शब्द-समूह में अर्थात् घट, कलश, कुम्भ आदि में ऐक्य माना जाता है । समानार्थक अनेक शब्दों में भो ऐकय इसके द्वारा मानना आवश्यक है ।।१४।।

समभिरूढ़नयस्वरूपमाह--

[द्रुतविलम्बितवृत्तम्]

समभिरूढनयः प्रतिशब्दतः,
कथयते पृथगर्थविशेषताम् ।
कलश-कुम्भ-घटेषु न चैकता,
भवति तेन विचार्य प्रयुज्यताम् ॥१५॥

सरलार्थ–

समभिरूढ़नय का स्वरूप

समभिरूढ़नामक यह नय प्रत्येक पर्याय में भिन्न-भिन्न अर्थ मानता है। प्रत्येक शब्द में अपनी-अपनी व्युत्पत्ति के अनुसार कुछ विशेषता रहती है। अतः कोई भी दो शब्द समानार्थक नहीं होते। सबका अर्थ भिन्न ही होता है, समान नहीं होता। व्युत्पत्ति से कैसे भेद आता है सो व्याख्या में दिया गया है। वहाँ देखें ॥१५॥

(१६)

व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य पुष्टिकरणम्–

[उपजातिवृत्तम्]

स्वकीयपर्यायिपदे तदर्थं,
न मन्यते भिन्नमहो तदा तु ।
घटे पटे क्वापि समस्य सर्वै--
रापत्तिरित्यर्थ समानतायाः ॥१६॥

सरलार्थ--

व्यतिरेकदृष्टान्त द्वारा समभिरूढ़ नय का पुष्टीकरण--

यदि समानार्थक अनेक शब्दों में समानता मानी जाय, और अपने-अपने व्युत्पत्तिजन्य विशेषार्थ को न माने तो घट-पट में भो समानता हो जायेगी। घट भी पट का पर्याय बन जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि दोनों के व्युत्पत्तिजन्य अर्थ में भेद है तब घट और कलश में समानता क्यों मानें ? यहाँ भी तो व्युत्पत्ति द्वारा भिन्नता हुई है।।१६।।

(१७)

एवंभूतनयस्वरूपमाह--

[इन्द्रवज्रावृत्तम्]

शब्देऽथ कस्मिन्नपि विग्रहार्थो,
जाघटयते चेदथ तत्र सोऽस्तु ।
कुर्वन्तमर्थं निजविग्रहाप्तं
जानाति सैवं पदकादिभूतः ।।१७।।

सरलार्थ--

एवंभूतनय का स्वरूप--

यदि किसी शब्द में उसका अपना विग्रहजन्य अर्थ बैठता है तो वह शब्द उस अर्थ में प्रयुक्त होगा अन्यथा नहीं अर्थात्-उसी अर्थ में उसका प्रयोग होगा। अपने

विग्रह-व्युत्पत्ति जन्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ जो शब्द है उसी को एवंभूत नय मानता है, अन्य को नहीं ॥१७॥

(१८)

व्यतिरेकदृष्टान्तेनास्य दृढ़ीकरणम्--

[उपजातिवृत्तम्]

स्वविग्रहाद् भिन्नमथास्ति वस्तु,
शब्दे न यत्रास्य घटेत भावः ।
तदा पटे किं न घटप्रयोगो,
वो भूयते तद् वद हे सुविज्ञ ॥१८॥

सरलार्थ--

व्यतिरेकदृष्टान्त द्वारा एवंभूत नय का दृढ़ीकरण--

यदि वस्तु अर्थात् शब्द अपने विग्रह (व्युत्पत्ति) से भिन्नार्थ को कहेगा तो घट शब्द का प्रयोग कुम्भ के अर्थ में ही नहीं होगा, अपितु पट के अर्थ में भी हो जायेगा। पूर्व श्लोक में कथित बात का ही यहाँ दृष्टान्त से समर्थन है ॥१८॥

(१९)

क्रमशो नयानां वैशिष्ट्यम्--

सप्ताप्यमी सन्ति नया विशुद्धाः,
यथोत्तरं चैषु परो विशिष्टः ।
एकैकरूपस्य शतं प्रभेदाः,
तस्मान्नयाः सप्तशतानि सन्ति ॥१९॥

सरलार्थ--

क्रमशः नयों का वैशिष्ट्य

सातों नय क्रमशः (प्रथम से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय इस प्रकार से) विशिष्ट से विशिष्टतर हैं। प्रत्येक नय के एक-एक सौ भेद होते हैं। इस प्रकार से सात नयों के सात सौ भेद हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥१९॥

(२०)

मतान्तरे नयानां पञ्चैवभेदाः—

[उपजातिवृत्तम्]

शब्दान्नयाद् यौ परिवर्तिनौ स्तः,
तौ शब्द अन्तर्भवितो मतेन।
नयाऽस्तु पञ्चैव तदात्मभेदैः,
भवन्ति ते पञ्चशतीभिदोऽत्र ॥२०॥

सरलार्थ--

मतान्तर से नय के पाँच भेद

शब्दनय के बाद जो समभिरूढ़ और एवंभूत नय हैं उन दोनों का अन्तर्भाव शब्दनय में ही माना जाता है। इस प्रकार दूसरे मत में नयों के पाँच ही भेद माने गए हैं। पुनः प्रत्येक के अपने सौ-सौ भेद होने से कुल भेद पाँच सौ बनते हैं ॥२०॥

(२१)

सप्तानामपि नयानां द्वयोरेव वर्गीकरणम्–

[उपजातिवृत्तम्]

द्रव्यास्तिके भान्ति च नैगमादि--
चतुर्नया वै ऋजुसूत्रकान्ताः।
शब्दादयस्ते चरमे त्रयोऽपि,
पर्यायपूर्वास्तिकवर्तिनः स्युः ॥२१॥

सरलार्थ–

सातों नयों का दो नयों में ही वर्गीकरण

पुनः ऐसा भी माना जाता है कि सातों नयों का अन्तर्भाव द्रव्यास्तिक में और पर्यायास्तिक में होने से नयों के दो ही भेद होते हैं। नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र इन प्रथम चारों नयों का अन्तर्भाव द्रव्यास्तिक में तथा शेष शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत इन तीन नयों का अन्तर्भाव पर्यायास्तिक में मानने से नयों के दो ही भेद समझने चाहिये ॥२१॥

(२२)

सर्वे नयाः परस्परं संमिल्य जिनागमस्य सेवां कुर्वन्ति, तद्विषयकं स्पष्टीकरणमाह–

[उपजातिवृत्तम्]

विरोधवन्तोऽपि मिथो नयास्ते,
संभूय जैनं समयं भजन्ते ।
यथा च सेनाजन एकतानः,
युद्धाः जयं भूपतये ददाति ॥२२॥

सरलार्थ–

सभी नय परस्पर मिलकर जिनागम की सेवा करते हैं, तद्विषयक स्पष्टीकरण

ये सातों नय परस्पर विरोधी होते हुए भी [हे प्रभो !] एकत्र हो कर आपके जैन आगम की सेवा करते हैं । जैसे परस्पर विरोध रखने वाले राजा तथा राजसेना एकत्र होकर युद्ध-रचना में चक्रवर्ती की सेवा करते है वैसे ही ये नय भी जिनोक्त शासनमार्ग में बाधक नहीं बल्कि साधक ही हैं ॥२२॥

(२३)

विभुश्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय समर्पणम्–

[द्रुतविलम्बितवृत्तम्]

परिमलोपमभावसमन्वितैः,
नयविमर्शविचः सुमनोऽक्षतैः ।
**जिनवरं चरमं परमं प्रभुं,*
विनयतोऽर्चति सूरिसुशील वै ॥२३॥

---

* श्रमणवीरविभुं जिनमन्तिमं

सरलार्थ–

यह **नयविमर्श** वाणी सुमन, अक्षतस्वरूप है। इसमें सुन्दर भाव ही परिमल हैं। इन उपकरणों से **सुशीलसूरि** विनम्रतापूर्वक अपने अन्तिम जिन श्रमण वीर विभु अर्थात् श्रमण भगवान महावीर परमात्मा की अर्चना (पूजा) करता है ॥२३॥

卐

प्र श स्ति ः

(१)

[अनुष्टुब्वृत्तम्]

पूज्याः श्रीनेमिसूरीशाः,
तपोगच्छेश्वराः शुभाः ।
सम्राजः शासने प्रौढाः,
तीर्थोद्धारधुरन्धराः ॥२४॥

सरलार्थ--

आचार्य श्रीनेमिसूरीश्वरजी म. सा. पूज्य हैं, तपागच्छ के नायक हैं, उत्तम हैं, शासन के सम्राट् हैं, प्रौढ़ हैं और तीर्थों का उद्धार करने में धुरन्धर हैं ॥२४॥

(२)

तेषां पट्टधराः ख्याताः,
ग्रन्थानेकानुसर्जकाः ।
विज्ञाः साहित्यसम्राजो,
लावण्यसूरिशेखराः ॥२५॥

सरलार्थ--

उन्हीं के पट्टधर **आचार्य श्रीलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.** प्रसिद्ध हैं, अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं, विज्ञ हैं और साहित्य-सम्राट् हैं ॥२५॥

(३)

तेषां पट्टधराः मुख्याः,
धर्मप्रभावकाः वराः ।
शास्त्रविशारदाः दक्षाः,
दक्षसूरीश्वराभिधाः ॥२६॥

सरलार्थ--

उन्हीं के प्रधान पट्टधर **आचार्य श्रीदक्षसूरीश्वरजी म. सा.** धर्मप्रभावक हैं, श्रेष्ठ हैं, शास्त्रविशारद हैं और दक्ष हैं ॥२६॥

(४)

तेषां पट्टधरः सोऽहं,
'सुशीलसूरि' नामतः ।
जिनोत्तमादिशिष्याणां,
नयज्ञानाय हेतवे ॥२७॥

सरलार्थ-

उन्हीं के प्रधान पट्टधर (मैं) **सुशीलसूरि** अपनी जिज्ञासावृत्ति एवं अध्ययन- स्वाध्याय से **जिनोत्तमविजयादि** शिष्यों के नय एवं तर्कशास्त्र के अध्ययनार्थ......॥२७॥

(५)

द्विसहस्रत्रयो त्रिंशत्-
तमे वैक्रमिके वरे ।
माघे शुक्ला त्रयोदश्यां,
मेदपाटे बुधे दिने ॥२८॥

सरलार्थ--

विक्रम संवत् २०३३ माघ शुक्ला त्रयोदशी (महा शुद १३) को बुधवार के दिन मेदपाट–मेवाड़ में ... ॥२८॥

(६)

करेड़ाख्ये शुभे तीर्थे,
अञ्जनस्य विधिः कृता ।
पार्श्वादिजिनबिम्बानां,
प्रतिष्ठायाः महोत्सवे ॥२९॥

सरलार्थ—

करेड़ा नाम के उत्तम तीर्थ में **अंजनशलाका** आदि विधि के साथ में **प्रभु श्रीपार्श्वनाथ** आदि अनेक जिनबिम्बों की **प्रतिष्ठा महोत्सव** समयावधि में महान् उत्सव एवं उल्लास के समय......॥२९॥

(७)

रचितञ्च कृता भाषा,
गद्य-पद्यान्वयान्विताः ।
नयविमर्शग्रन्थोऽयं,
सर्वेषां तावज्ज्ञानदः ॥३०॥

सरलार्थ--

मैंने संस्कृत गद्य-पद्यान्वय से युक्त सबको तत्त्वज्ञान देने वाले इस **'नयविमर्श'** नामक ग्रन्थ की रचना की है। [इसका हिन्दी भाषा में **सरलार्थ, पद्यानुवाद** तथा **भावानुवाद** भी किया है] ॥३०॥

(८)

अभिलाषा मदीयेयं,
जायतां जगतां हिते ।
यावच्चन्द्रार्कभावन्तौ,
तावद् ग्रन्थो विभासतु ॥३१॥

सरलार्थ--

मेरी अभिलाषा है कि यह ग्रन्थ सबको तर्कशास्त्र–न्यायशास्त्र का ज्ञान सुगमता से प्रदान करे तथा जब तक चन्द्र और सूर्य हैं तब तक यह सुशोभित रहे ॥३१॥

(९)

[वसन्ततिलकावृत्तम्]

द्वात्रिंशिका नयविमर्शविचांसि पुष्पैः,
पद्यात्मभावमकरन्दरसाभिरामैः ।
गद्यात्मकाक्षतकणैः सुललामरूपैः,
त्वामर्चयामि जिनशासनशास्त्रपीठे ॥३२॥

सरलार्थ–

हे जिन ! आगम शास्त्रपीठ पर मैं पद्यमय भावमकरंद-रसों से युक्त नयविमर्शद्वात्रिंशिका रूपी पुष्पों से तथा गद्यात्मरूप सुन्दर पूजाक्षतों से आपकी अर्चना करता हूँ ॥३२॥

॥ इति श्रीनयविमर्शद्वात्रिंशिका हिन्दी सरलार्थ समाप्त ॥